राजहंस

साहित्य का सच्चा स्वरूप इस के स्वयमेव स्वभावत सस्कृत होने मे है। जब जीवन भरपूर होता है तब वह जो फूट फूट कर स्वभावत निकलने लगता है तो उसके वाक्यात्मक रूप को साहित्य कहते है। वह बडा सरस होता है उस मे बल भी बडा होता है। अत आप सच्चा साहित्यकार या शक्तिशाली कवि बनना अभीष्ट हो तो अपने सम्पूर्ण जीवन को अन्दर से भरपूर करने की साधना करनी चाहिये न कि दूसरो की नकल मे जबरस्ती कुछ निकालने की जरूरी। ऐसा बनावटी साहित्य रोज बहुत सा पैदा होता और मर जाता है। वैसे साहित्य की एक दो पंक्तियां भी अमर होती जा[illegible] [illegible] को अमर करती रहती है।

* *

दैवी घटना कि श्री शारदाचरण मित्र के अकालमें ही काल कवलित होने के कारण एक लिपि विस्तार का काम ढीला पड़ गया। फिर भी उनके लेखों ने किसी प्रकार चलो ही — देवनागर बन्द हो गया। भारत की भिन्न २ प्रान्तों की भाषाएं सखि-सहेलियों की भांति एक जगह मिल बैठ जाती थी। वह बात भी जाती रही।

१९१६ दिसम्बर का मास सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। राष्ट्र एक धार लोकमान्य तिलक के भाषण का अंश, इसलिये कि मतलब एक शब्द "Luck-now = लखनऊमें अब भाग्योदय का समय आया" यह शब्द मेरे कानमें अब तक गूंज रहा है। वस्तुतः वहां लोकमान्य तिलक और श्री जिन्ना गुरुशिष्य के रूपमें विद्यमान थे और वहां कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का समझौता हो गया था। दैवी गति देखिये उसी लखनऊमें एक बार हुआ यह आपसे छुपा हुआ नहीं —

वहीं कांग्रेस के दिनोंमें गणेशगंज आर्यसमाज के विशाल मण्डपमें 'एकलिपिविस्तार-परिषद्' का जोरदार विराट महाधिवेशन हुआ और हुआ स्व० श्रीमती एनीबिसेन्ट - वसन्ती देवी की अध्यक्षतामें। उस सम्मेलनमें इतनी अधिक भीड़ थी कि मण्डप ही हिलने लगा था। नेताओं को व्यासपीठ तक जाने के लिये मार्ग ही नहीं मिल रहा था। धक्कापेल इतनी अधिक हो गई थी कि लाख यत्न भी सभा शान्त न हो सकी। इतने में महामना मालवीयजी पधारे। मालवीय जी को देखकर ही लोगों के निर्देशानुसार व्यासपीठ पर पहुंचा दिया गया।

इस सभा के पश्चात् लोगों में यही चर्चा रही कि आज विचित्र बात हुई। राष्ट्रभाषा का एक नया प्रश्न खड़ा हो गया।

उसी दिन सायंकाल के समय में कांग्रेस के खुले अधिवेशन में महात्मा गान्धी जी एक प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए खड़े हुए। लोगों ने वही "इंग्लिश इंग्लिश" की आवाज़ कसी। महात्मा गान्धी ने उस पर कहा कि 'नो' और यह भी कहा कि वे प्रस्ताव की केवल 'पाण्डुलिपि' को अंगरेज़ी में पढ़ेंगे किन्तु भाषण हिन्दी में देंगे।

महात्मा गान्धी का वह रूप देखने योग्य था। गुजराती टेढ़ी सिरी पगड़ी, लम्बा तनीदार घुटनों के नीचे तक पहुँचने वाला अंगरखा, वह गुजराती ढंग का उपरना, कंधे पर डाली हुई चादर, वह हिन्दी भाषण एक विचित्र दृश्य था। इस वेश में वहाँ तीन ही व्यक्ति आकर्षक थे। एक लोकमान्य तिलक, उनके कार्यवाह मन्त्री श्री 'नरसिंह चिन्तामणि केलकर' और महात्मा गान्धी। शेष सब अंगरेज़ों के ठाठ से प्रतीत हो रहे थे। दो ही पगड़ियाँ चमक रही थीं, तिलक की मराठा शाही लाल पगड़ी और महात्मा गान्धी का काठियावाड़ी पगड़। किन्तु समस्त कांग्रेस भाषणों में हिन्दी का एक ही भाषण था, वह भी महात्मा गान्धी का। बस राष्ट्रभाषा के कांग्रेस में चरण प्रवेश का यही दिन था। उधर हिन्दी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा काशी भी अपने ढंग पर नागरी प्रचार का काम ज़ोर से कर ही रहे थे किन्तु उनका वह कार्य सबका प्रान्त में ही सीमित था।

लोकमान्य भी बोले

महात्मा गान्धीने अपनी वाणीद्वारा लखनऊ मे हिन्दीका गोला डंका दिया ही था किन्तु राजनीतिक क्षेत्रमें जिनका शब्द 'ब्रह्मवाक्य' समझा जाताथा वे तिलक चुपथे। उनकी विशेष नीति रहतीथी कि वे

न बुद्धिभेदं जनयेद्
अज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्,

इस गीता वाक्यपर आरूढ़ रहतेथे। धर्म राजनीति अथवा अन्य प्रश्नोंपर ऐसी कोई बात नहीं कहतेथे कि जिससे जनतामें मतद्वैध हो जाय। इसीलिए वे राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर चुपरहे। इसीलिए वे धार्मिक विषय पर कुछ नहीं बोलते थे। इसीलिए वे खिलाफत आन्दोलनसे पृथक्‌रहे। वे केवल लोकहृदय में स्वराज्य की ही बात कहते थे सोते उठते जागते बोलते, बतलाते केवल स्वराज्य काही प्रश्न उनके सामने रहताथा। वे सदा यही कहा करते थे कि स्वराज्य के बिना अन्य प्रश्नों का निपटारा हम न कर सकेंगे।

आखिर उस विषयमें लोकमान्य तिलक के भी बोलने का समय आया। कलकत्ते में 'सर जॉन वुडरफ' की अध्यक्षतामें 'आर्ट-कॉन्फ्रेन्स' हुई थी। उस समय ज्योंही लोकमान्य बोलने खड़े हुए तब लोगोंने "हिन्दी हिन्दी" की पुकार मचाई तब लोकमान्यने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि "खेद है मैं हिन्दीमें अपने अभिप्रायको प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ —

किन्तु वह अनुभव कर रहा हूं कि भारतवर्ष के लिए एक सर्वमान्य Lingua-franca (लिंग्वा फ्रेंका) की आवश्यकता है और ऐसी भाषा हिन्दी ही है। समझते हो लोकमान्य के इस भाषण से राष्ट्रभाषा-हिन्दी के चार चांद लग गए। कलकत्ते से लौटते समय जब्बल-पुरमें आपने लोगों के अनुरोध से टूटी फूटी हिन्दीमें चार पांच मिनट तक भाषण दिया था पर उनकी वही अंग्रेजी ही चल रही थी। महात्मा गांधीने 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें' हाथ डालकर जिसप्रकार दक्षिणके लिए 'दक्षिण हिन्दी प्रचार' समिति स्थापन कराई और उस समितिद्वारा दक्षिण प्रान्तमें किस प्रकार आशातीत कार्य हुआ उस बात को दुहराने का समय नहीं है। अब महाराष्ट्र की भी अपनी हिन्दी साहित्य समिति हो गई है और महाराष्ट्र भी इस विषय में अग्रेसर हो रहा है, इधर पोलिटिकल वातावरण इतना बढ़ गया है कि "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" राजनीतिक लोगों के हाथमें चला गया है। और अब हिन्दी-साहित्य सम्मेलन "हिन्दी" की बात करे तो "भारतीय साहित्य परिषद" हिन्दुस्तानी की बात कर रही है। यह मैंने संक्षेप से हिन्दी की प्रगति की बात कही है।

अब कांग्रेस की कार्यवाहिनी भाषा हिन्दी हो गई है। राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही है और हिन्दी इतनी जोर से छलांगे मार रही है कि आशा लगती है कि उसके इतनी शीघ्रता से इतनी प्रगति देखकर लोग अचंभा कर सकते।

इस हिन्दी भाषापर पहिले पहिले बंगाली की छाया और छाप रही— फिर बंगाली का ग्रहण छूट कर अंग्रेजी का ग्रहण लग गया- वह ग्रहण आज तक छूटे नहीं छूट रहा है- मौलिक ग्रन्थों का निर्माण कहीं २ देखने को मिल रहा है।

हिन्दी 'राष्ट्र भाषा' हो भी सकती है या नहीं? यह प्रश्न तो भूतकाल में होता तो ठीक था अब तो वह राष्ट्रभाषा का रूप प्राप्त कर चुकी है। जैसे कोई चित्रकार चित्र की रूपरेखा स्वीकार कर उसमें यथोचित रंग भी लगाता है उसी प्रकार राष्ट्रभाषा में रंग भरे जा रहे हैं। केवल खेद इतना ही है कि रंग भरने में एक हाथ नहीं लग रहा,— अनेक हाथ लग रहे हैं उससे राष्ट्र भाषा का स्वरूप भविष्य में क्या होगा यह कहना कठिन है।

हिन्दी और उर्दू

पहिले पहिले हिन्दी और उर्दू में खेंचातानी अथवा खींचातानी रही, वर्षों यही हाल रहा। हिन्दी के प्रचारकों पुरस्कर्ताओं अथवा नेताओं ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दी-उर्दू के समन्वय में सब प्रकार के प्रयत्न किये किन्तु प्रीतिकर संगति ठीक ठीक न बैठ सकी। फल यह हुआ कि अब हिन्दी और हिन्दुस्तानी दो स्वतन्त्र प्रवाह चल पड़े हैं — कोई यह कहते रहे कि हिन्दी और उर्दू में कोई भेद नहीं केवल लिपि का भेद है। मुसलमान लोग प्रारम्भ ही से समझते रहे कि और अब भी समझते हैं कि हिन्दी तो उर्दू के लिए सौत खड़ी होगई। और कारण

विरोध कर रहे हैं। मैं तो यह देख रहा हूं कि मुसलमान सम्प्रदाय को न तो हिन्दी की बात ही पसन्द कर सकी और न ही हिन्दुस्तानी की बात। इस हिन्दुस्तानी की बात से यह बात विचारने को सामने आ गई कि कहीं हिन्दी के विषय में,

"गणेशं कुर्वाणो वानरं चकार।"

की उक्ति चरितार्थ न हो जाय —

हिन्दी के टेकेदारों में पहिले ही इतना अंधेर मच रहा है कि उनमें हिन्दी का स्वरूप बहुत कुछ विकृत होता जा रहा है दूसरे इस बोलचाल में हिन्दुस्तानी हिन्दी को कुछ का कुछ बना रही है। जिन्होंने कांग्रेस के हिन्दुस्तानी भाषण सुने हैं वे अवश्य चिन्तित होंगे। एक उर्दू का शब्द, एक हिन्दी का, एक संस्कृत का, दो अरबी के लिंग व्यत्यय क्रिया व्यत्यय, रचना शैथिल्य, वाक्य सन्दिग्ध — एक खिचड़ी सी बनती रहती है। उधर हिन्दू ऐसी हिन्दी बोलने लगे हैं तो उधर मुसलमान अपनी उर्दू को अरबी के साँचे में पूरी तरह से ढाल रहे हैं।

हिन्दी उर्दू एक नहीं

मैं हिन्दी उर्दू को एक नहीं मानता. उनकी लिपि, उनका ढांचा सब कुछ पृथक् है। मैं संस्कृत लिपि हिन्दी को हिन्दी मानता हूं और उर्दू को अरबी लिपि। मैं मानता हूं कि उर्दू अथवा अरबी के एक शब्द के ला[illegible] सर्वलोक कल्याणकारिणी, सर्वलोक भाषा जननी गीर्वाणी

बापू के आश्रय और आशीर्वाद से हिन्दी अपना स्वतन्त्र पृथक जीवन व्यतीत कर सकती है सर्वतोमुखी उन्नति कर सकती है, बाकी जनताने बोलचाल के लिए उर्दू की खिचड़ी पकती रहती ही। जब प्रान्तकी भाषाएं सर्वथा निर्मित हैं तो जब आपस परस्पर सम्पर्क में आयेगी तो परस्पर विचार विनिमयमें ऐसी खिचड़ी पकेगी ही किन्तु हिन्दी स्वतन्त्ररूपमें अपनी सत्ता रख सकती है वह २५०००००० हिन्दुओं की जीती जागती राष्ट्र भाषा रह सकती है और जो इतनी बड़ी जनता की भाषा है उसकी उपेक्षा मुसलमानों को भी नहीं करनी चाहिये उनको अपने पुराने साम्राज्य के सपने नहीं देखने चाहिए। जिन जातियों की संस्कृति संस्कृत से सम्बन्ध रखती है जिनके धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत में हैं जिनका ज्ञान संस्कृत में है वे हिन्दुस्तानी के बिना विशुद्ध हिन्दीमें काम चला सकते हैं। बंगाल को बिहार के यू पी को राजपूताना महाराष्ट्र मद्रास कर्नाटक मध्यप्रदेश विदर्भ किसीको ऐसी हिन्दुस्तानी की आवश्यकता नहीं —

मैं जब एकबार मद्रास गयाथा तो मेरे एक परिचित मित्र-मन ही मन हिन्दी सीख रहे थे मैंने कहा-कहिये आप अच्छे हैं तो उन्ने कहा कि खुदाके फजल से अच्छे हैं। मैं तो चकित रह गया और मैंने मुस्कुरा के कहा खुदा के फजल से तो आप अच्छे हैं तो ईश्वर की कृपा से कुशल नहीं? खेद है ऐसी हिन्दुस्तानी वहां के हिन्दुओंमें प्रचलित है। हिन्दू भी उर्दू से परिचय रखें मुसलमान हिन्दी से परिचय रखें और परस्पर जब सम्पर्क में आएं तब समझने समझाने के लिए मिश्रित भाषा का

प्रान्तों की कठिनाइयाँ —

मद्रासी को शिकायत रहती है कि आपके लिंगभेद हमारी समझ में नहीं आते हैं। महाराष्ट्र को शिकायत है कि हिन्दी में यह 'मिस्त्री-का-रोग' कहां से लागया। इसी प्रकार उस उस प्रान्त की भाषा की दृष्टि से यह प्रश्न आवश्यक होगया है कि तमाम मिलकर सोचें कि उन कठिनाइयों को कैसे दूर किया जाय। महाराष्ट्र को तो हिन्दी में उर्दू अथवा अरबी शब्दों का सम्मिश्रण पसन्द नहीं है। जिस महाराष्ट्र ने मरहठा राज्य में पचासों उर्दू शब्दों को अपनी भाषा में मिलाया, पचाया वही महाराष्ट्र उर्दू शब्दों से घबरा रहा है यह आश्चर्य है। मद्रास और महाराष्ट्र को विशेषकर मद्रासियों को हिन्दी के अनेक शब्दों के उच्चारण में कठिनता का अनुभव होता रहता है। जो मद्रासी अंग्रेजी फ्रेंच आदि में अंग्रेज और फ्रेंचों के भी कान काटते हैं और जिनकी अपनी मातृभाषा भी एक विकराल भाषा है, अथवा दूसरी भाषा वालों के लिये एक विकट संकट है। वे हिन्दी की थोड़ी सी बात से क्यों घबराते हैं। ये सब दिक्कतें हैं तो भी स्वराज के प्रश्न के साथ राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी हल हो-जायगा इसमें सन्देह नहीं।

अब सरकार भी इस बात को मानगई है कि शिक्षा का

माध्यम प्रान्तीय भाषा होना चाहिये। राष्ट्र भाषा की दृष्टि से अन्यभाषा भाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में कहीं कहीं अनिवार्य और कहीं कहीं हिन्दी ऐच्छिक रक्खी जाती है। हिन्दी परीक्षाओं में तो पंजाब की लड़कियों ने बाजी मारली है। संयुक्त प्रान्त की हिन्दी की परीक्षाएं भी व्यापक हो चली हैं। मद्रास में तो अपूर्व जागृति है। हजारों नवयुवक और नवयुवतियें हिन्दी की परीक्षाओं में सम्मिलित होती हैं। महाराष्ट्र ने अपना परीक्षा सम्बन्ध मद्रास के साथ जोड़ लिया है। कर्नाटक ने अपना पृथक् हिन्दी साहित्य सम्मेलन बना लिया है। पिछड़ा हुआ है तो वह एक ही प्रान्त है बंगाल आसाम था। बंगालियों का स्वभाषा और साहित्य प्रेम सर्वत्र प्रशंसनीय है। उनमें प्रान्तीयभाव अधिक रहते हैं। इसीलिये वे हिन्दी की ओर अभी ध्यान नहीं दे रहे हैं। आसाम में हिन्दी चल पड़ी है पर बहुत धीरे धीरे। गुजरात काठियावाड़ तो महात्मा गांधी, विट्ठलभाई और वल्लभभाई की जन्म भूमि ठहरी। वह हिन्दी में किसी भी प्रान्त से पीछे नहीं रहेगी। राजस्थान, सिन्ध, सीमाप्रान्त - इनके भी भाग्य खुलेंगे ही। इस प्रकार राष्ट्र-भाषा की प्रगति हो रही है।

ॐकार स्नातक [illegible] 'पाण्डेय' [illegible]

ने कहा था कि यदि माता के स्तनों में दुग्ध न हो, विकार युक्त हो, कम हो, बलदायक न हो तो क्यों न धायी के दुग्ध से काम लिया जावे। श्री टण्डन जी ने उसका करारा उत्तर दिया था और ललकारा था कि कौन कहता है कि माता का दुग्ध निर्बल है। — अब तो हिन्दी-साहित्य को निर्बल कह ही नहीं सकते। हिन्दी में क्या क्या है और उसका साहित्य कितना बलवान है और उसका प्रभाव कितना है इसकी विवेचना इस समय अप्रासङ्गिक होगी। और अब मुझे स्वयं निश्चित नहीं कि मेरी लेखनी क्या क्या लिख रही है। ठीक भी लिख रही है या नहीं। हिन्दी में सर-पट लिखती जा रही है कि हिन्दुस्तानी में ? — आज मैंने इस भाषण को लिखते हुए यह प्रतिज्ञा की है कि सामने जो विचार आयगा उसी को लिखता जाऊँगा, क्रम आदि कुछ नहीं रक्खूँगा, जो भी भाव सामने आयगा उसका स्वागत करूँगा, जो भी बात हृदय में है स्पष्ट कहूँगा। चाहे किसी को रुचे या न रुचे।

प्रिय बन्धुगण जब हिन्दी में राष्ट्र भाषा बनने की योग्यता आ चली है और राष्ट्रभाषा बन भी चली है तो विभिन्न प्रकार के राष्ट्रों, भाषाओं और लिपियों का

भाषा नहीं बन सकी। अन्य प्रांतों में न जाने कब बनेगी किन्तु वहाँ प्रान्तीय भाषाएं संभवतः हिंदी को अवसर न देंगी। तो भी राष्ट्रभाषा की उतनी क्षति न हो। जैसे किसी समय में संस्कृत में सब काम चल जाता था, फिर अंग्रेजी में सब आदि काम चलने लगा इसी प्रकार राष्ट्रभाषा में सब आदि काम चलने लगा है।

जो लोग कांग्रेस में आते हैं क्या वे अनुभव नहीं करते कि एक आसामी एक मद्रासी से टूटी फूटी हिंदी में कैसे काम चलाता है। एक महाराष्ट्र निवासी एक बंगाली से कैसे भुगतान करता है। वहाँ तो सब काम हिंदी में ही चलता है और एक राष्ट्र सा प्रतीत होने लगता है। सब प्रान्तवाले एक स्वर से वन्देमातरम् राष्ट्रीयगीत कहते हैं। सब एक स्वर से "भारत की जय" कहते हैं। सब हिंदी में ही परस्पर व्यवहार करते हैं। राष्ट्रभाषा का यह काम क्या थोड़ा है। वक्ता मंच पर आया और अंग्रेजी बोलने लगा कि सभा "हिन्दी हिंदी" का हुल्लड़। वक्ता अपनी असमर्थता प्रकट करके प्रायः समुदाय से क्षमा मांगकर अंग्रेजी में बोलता है। यह मनोवृत्ति किस बात की द्योतक है। हिंदी में बोलनेवाला अच्छी दृष्टि से देखा जाता है यह क्या है। महात्मा गान्धी, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल आदि नेताओं

थी क्योंकि उनके त्याग तपस्या में तो है ही किन्तु उनकी राष्ट्र-
भाषा तथा लगन में भी है। जिसको हिन्दी में बोलना अथवा
हिन्दी में भाषण देना नहीं आता वह निखिल भारतवर्षीय
नेता नहीं बन सकता, यह मेरा दावा है। वह राष्ट्रपति भी नहीं
बन सकता। यदि बन भी जायगा तो जवाहर, राजेन्द्र, मोहन
दास वल्लभभाई की जो बात है वह उसमें नहीं आ सकेगी।
ये नेता अंग्रेजी में अंग्रेजी वालों को जवाब देते हैं और जनता
को हिन्दी में खुश कर लेते हैं। और जनता भी इनके अभि-
प्राय को समझकर इनकी अनुगामिनी बन जाती है।

श्री विनायकराव सावरकर ने अपने संस्मरण
में एक बड़े मजे की बात लिखी है कि जब वे और उनके
क्रान्तिकारी मित्र लंदन के 'इंडिया हाउस' में रहते थे
तो प्रायः आपस में अंग्रेजी में ही बातचीत होती रहती
थी क्योंकि भारतवासी होने पर भी उनकी प्रान्तीय भाषा भिन्न
थी, काम अंग्रेजी से ही चलता था। एक दिन (Lady
of the house) घर की मालकिन ने इनसे लगभग कहा
कि – आपकी कोई सामान्य भाषा नहीं है – It seems
you Indians have no common language
33 d So. सावरकर आदि बहुत झेंपे और इसीलिए वहे

सामयिक व्यग्रता, विविध कार्यों की व्याकुलता, स्व-व्यापृति जन्य मानसिकता इत्यादि कारणों से मैं जैसा चाहता था न लिख सका, जैसा भी बन सका आपके संमुख उपस्थित है — साधु ।।

स्वागताध्यक्ष का भाषण

ले० श्री पं० हरिदत्त जी उपस्नातक

पूज्य सभापति जी, मान्य प्रतिनिधिगण !!

मैं यहां खड़ा होकर किन शब्दों में आपका स्वागत करूं ? मैं बहुत चाहता था कि सुन्दर शब्दों में कुछ वाचाल होकर आपका स्वागत करता किन्तु आपकी उपस्थिति से, मुझे इतना अधिक हर्ष हो रहा है कि मैं मूक हो गया हूं, मुझे नहीं सूझ पड़ता कि मैं किस प्रकार आपका स्वागत करूं। यह सर्वथा स्वाभाविक भी है। किसी भावातिरेक में हमारी यह स्थिति हो जाती है। यदि हम अत्यधिक भयभीत हो जाय तो लाख प्रयत्न करने पर भी आवाज नहीं निकलती। यदि अत्यधिक आनन्द का अनुभव हो तो भी हमारी जबान नहीं खुलती। इस समय मेरी भी ऐसी ही दशा हो रही है। भाव हैं, व्यक्त होना चाहते हैं ? बाहर निकलने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु भाषा धोखा दे रही है। शब्द कोरे अपर्याप्त जान पड़ते हैं। सम्भवतः यह है भी अनुभव करने की चीज

यद्यपि मैं आपका स्वागत करने में मूक हूं, परन्तु प्रकृति मौन नहीं। कलकल निनादिनी भगवती भागीरथी तो मुखर हो कर आपका स्वागत गान कर रही है।

* कई वर्षों बाद अब तक आज फिर यहां पर महात्मा जी

करने के लिये इकट्ठे हुए हैं। सचमुच यह आनन्द मनाने का समय है
परन्तु यह देखकर दुःख होता है कि सरस्वती के कुछ उपासक
हमसे सदा के लिये विदा लेकर उस लोक में चले गये हैं जहां से
आज तक कोई मनुष्य लौट कर नहीं आया। उनका अभाव बहुत
खटक रहा है। उनके उठ जाने से हिन्दी साहित्य को अपरिमित
क्षति पहुंची है। अभी हम प्रेमचन्द जी के निधन का दुःख भी
नहीं भुला पाये थे कि हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित और लेखक श्री
रामदास जी गौड़ चल बसे। रामायण के पाठ संशोधन विषय
में उन्होंने विशेष काम किया था। उतना शायद ही किसी ने
किया होगा। जीवन भर वे हिन्दी साहित्य को दार्शनिक एवं
वैज्ञानिक ग्रन्थों से समृद्ध करते रहे। अभी पिछले वर्ष ही
सम्मेलन ने उनको 'विज्ञान हस्तामलक' पर मंगलाप्रसाद
पारितोषिक देकर सम्मानित किया था। श्री काशीप्रसाद जी
जायसवाल का देहावसान भी हिन्दी के दुर्भाग्य का सूचक है।
उन्होंने हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। श्री जयशंकर जी प्रसाद
की मृत्यु से हिन्दी का एक उच्च कोटि का कलाकार, कहानीलेखक,
औपन्यासिक और नाटककार उठ गया है। ओरछा राजकवि,
हिन्दी की सेवा करने वाले श्री 'मुन्शी-अजमेरी' को भी आज
अपने बीच में न देखकर दुःख होता है। आर्य समाज के
प्रसिद्ध विद्वान् श्री० प० चमूपति जी ने हिन्दी के अनेक

महाविद्यालय ज्वालापुर और उसके प्राण तथा हमारे सम्मेलन के सभापति श्री पं० नरदेव जी शास्त्री का नाम भूलना भूल होगी। श्री शास्त्री जी ने हिन्दी-प्रचार के लिये सराहनीय प्रयत्न किया है। वे सफल लेखक और वक्ता हैं। श्री किशोरीदास जी वाजपेयी ने अपनी 'तांत्रिक' आलोचनाओं से हमारे हृदयों को आलोकित किया है। श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक के यात्रा-वर्णनों से सबने दुनियां की सैर की है। इस प्रकार सब महानुभाव हिन्दी की सेवा में तन-मन से लगे हुए हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ दो अनुष्ठान भाग किये जा सकते हैं। एक हिन्दी सम्बन्धी और दूसरा साहित्य सम्बन्धी। हम इन दोनों पर क्रमशः विचार करेंगे।

हिन्दी सम्बन्धी कार्यों में हिन्दी का प्रचार, प्रसार एवं देवनागरी लिपि का प्रचार करना है। हिन्दी का प्रचार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। यह देखकर प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को प्रसन्नता होना स्वाभाविक है। १९१८ में महात्मा जी के नेतृत्व में मद्रास में जिस हिन्दी प्रचार का आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था वह आज पूर्णतया सफल हुआ है। २० वर्ष के अरसे में ८½ लाख रुपये से छः लाख लोग हिन्दी सीख गये हैं! श्री जमनालाल जी के आशातीत शब्दों में राष्ट्रीय

हिन्दुस्तानी में संस्कृत शब्दों को तो उर्दू-चक्र देकर निकाल दिया जाता है परन्तु अरबी और फारसी के शब्दों की भरमार रहती है। कुछ नेता अपने भाषण हिन्दुस्तानी में देते हैं। परन्तु हमें सन्देह है कि जनता उन्हें पूरा पूरा समझ सकती है। इसके बाद हम तो उनके शब्दों के जाल में ही उलझ जाते हैं, अतः स्वभावतः शंका होती है कि हिन्दुस्तानी के नाम से उर्दू का प्रचार तो नहीं किया जा रहा है।

हिन्दुस्तानी के पक्षपातियों का कथन है कि हिन्दी के विकास में मुसलमानों का बड़ा हाथ रहा है। इनके समय में पहली रचना अमीर खुसरो की है। मुसलमानों के दरबार में इसका पोषण हुआ। कबीर, रहीम, रसखान, मलिक मुहम्मद जायसी आदि मुसलमान कवियों ने हिन्दी में रचनायें की। वर्तमान समय में देश की साम्प्रदायिक एकता के कारण यही नीति अपनानी पड़ रही है। इसका हिन्दी साहित्य में नहीं फैलाना चाहिये। हमारा साहित्य सर्वसाधारण जनता के लिये होना चाहिये। यदि उसमें संस्कृत निष्ठ अथवा फारसी, अरबी के शब्दों की भरमार होगी तो जनता उसे नहीं समझ सकेगी। अतः हमें सरल हिन्दुस्तानी की रचना करनी चाहिए।

आज कल

निःसन्देह साम्प्रदायिकता एक अति भयप्रद है। हम उसके घोर विरोधी हैं। परन्तु हिन्दुस्तानी से साम्प्रदायिकता की समस्या का हल संभव नहीं है। उर्दू-हिन्दी का भेद सांस्कृतिक है। जिन मुसलमानों ने हिन्दी में कविता की है, उनपर हिन्दु संस्कृति की गहरी छाप थी। रसखान ने वैष्णव धर्म की दीक्षा लेने का प्रयत्न किया था। कबीर क्योंकि मुसलमान के अतिरिक्त श्रीरामानन्द के शिष्य थे। मलिक मुहम्मद जायसी यदि कट्टर मुसलमान होता तो पद्मावत में अलाउद्दीन के अत्याचारों का इतना रोमांचकारी वर्णन न करता। हिन्दू धर्म ने इनपर गहरा प्रभाव डाला था। इसी कारण इन्होंने हिन्दी में लिखा था। यदि अन्य मुसल-मान भी इनका अनुसरण करते तो यह समस्या ही न होती। उर्दू हिन्दी विवाद तो सांस्कृतिक है। सैकड़ों वर्षों तक हिन्दुस्तान में बसने के बाद भी यदि मुसलमान अपनी प्रेरणा अरब और ईरान से पाते हैं तो यह उनके तथा देश के लिये हानिकर है। इस दशा में एकता संभव ही नहीं।

यदि उर्दू से मिलाने के लिये हम अपनी भाषा में अधिकाधिक अरबी फारसी के शब्द डालते जायेंगे तो हम अपनी प्राचीन संस्कृति और साहित्य से भी दूर हो जायेंगे

लाभ तो हिन्दी को राष्ट्र भाषा होने का हमारा आग्रह है। क्योंकि हिन्दी संस्कृत मूलक होने से बंगाली, मराठी, गुजराती, उड़िया, आसामी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ आदि के ज्यादा नजदीक है। इसे आसानी से समझा जा सकता है। पर हिन्दुस्तानी होने पर 1931 की जनगणना से श्री ग्रियर्सन जी ने कुछ संख्यायें निकाली थीं जिनसे यह बात सच्चाई से स्पष्ट होती है। भारत के 34 करोड़ देशी भाषाभाषियों में 24 करोड़ लोग शुद्ध संस्कृत कुल की भाषायें बोलते हैं। अर्थात् 100 में 72 व्यक्ति संस्कृत कुल की भाषाओं का व्यवहार करते हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत प्रधान और संस्कृत युक्त मलयालम, कन्नड़, तेलगू तथा तामिल आदि भाषा बोलनेवाले 18% हैं। इस प्रकार संस्कृत से सम्बद्ध भाषा भाषी 90% हो जाते हैं। हिन्दुस्तानी को स्वीकार करने से पहले हमें इस पर ध्यान पूर्वक विचार कर लेना चाहिये कि हमें 90 प्रति शतक से अपना सम्बन्ध तोड़कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना है या 10% को विशेष महत्व प्रदान करने के लिये हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद से भी गिराना है। यदि इस 10% का विश्लेषण किया जाय तो उर्दू बोलने वालों की संख्या इससे भी कम होगी। हिन्दुस्तान में 8 करोड़ मुसलमान हैं पर वे सब उर्दू बोलते हैं ऐसा कहना भ्रमपूर्ण हो

आज कल

सीमान्त का पठान पश्तो में बात करता है। पंजाबी मुसलमान की भाषा पंजाबी है। सिन्धी की सिन्धी। महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल में भी यही हाल है। यद्यपि बंगाल में कुछ स्थिति बदल रही है और मुसलमान वहां की भाषा बोलने में अभिमान कर रहे हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि उर्दू किसी की भी मातृभाषा नहीं। ऐसी अवस्था में हिन्दी को उसके साथ जोड़ना हिन्दी के लिए बहुत नुकसान होगा। उर्दू के फेर में पड़ कर वह राष्ट्रभाषा के लिये भी उपयुक्त नहीं रहेगी।

फिर इस हिन्दुस्तानी में उच्च साहित्य भी उत्पन्न नहीं हो सकता। इसको वैज्ञानिक तथा दार्शनिक परिभाषाओं के गढ़ने की आवश्यकता पड़ेगी। संस्कृत से हम इनको आसानी से गढ़ सकते हैं और वे सभी प्रान्तीयताओं में समानता से ग्रहण की जा सकती हैं। economics का अनुवाद अर्थशास्त्र या सम्पत्तिशास्त्र सभी प्रान्तीय भाषाओं में आसानी से समझा जा सकता है, किन्तु 'इल्मे इक्तसादियात' शब्द तो इतना कठिन है कि हिन्दी वाले भी उसे न समझ सकेंगे। डिमाक्रेसी शब्द के अनुवाद लोकतंत्र, गणतंत्र, या प्रजातंत्र का अर्थ कठिन नहीं पर जमहूरियत का अर्थ अच्छे हिन्दी पढ़े लिखे भी न समझ सकेंगे। भारतवर्ष को इस समय पश्चिम के विज्ञानों की अत्यन्त आवश्यकता है। उनके बिना हमारा उत्थान नहीं हो

सकती। उनको मानते हिन्दुस्तानी भाषामें किसतरह समझाया जा
सकता है यह हमें अबतक समझ नहीं आया। हिन्दुस्तानी एके-
डमी ने अब तक अनेक उच्चकोटि के वैज्ञानिक ग्रन्थ तैयार
करवाये हैं। परन्तु हमें हिन्दुस्तानी भाषा में एक भी ग्रन्थ देखने
तक को न मिला। इसके मंत्री श्री ताराचन्द जी हिन्दी में जो
लेख लिखते हैं वे हिन्दुस्तानी नहीं कहे जा सकते। वास्तव-
में तथ्य इसी बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि हिन्दुस्तानी केवल
कल्पना तथा स्वप्न मात्र ही है।

इसके बाद लिपि के प्रश्न पर आइये। आजकल लिपि
सुधार के नाम पर बहुत कुछ बिगाड़ का प्रयत्न हो रहा है।
ब्रजभाषा की एक कहावत है कि "वा सोने को जारिये,
जासों टूटे कान"। जिस सोने से कान टूट जाते हों उसको
तो न लेना ही अच्छा है। हिन्दी को शुद्ध लिपि बनाने के
नामसे जो उसके अंग-च्छेद के प्रयत्न हो रहे हैं, उनकी
छीछालेदर हो रही है। वह निस्सन्देह हिन्दी प्रेमियों के लिये
चिन्ता और दुःख का विषय है। हम अपरिवर्तनवादी
नहीं हैं। विकास और गति को जीवन का चिह्न मानते हैं
परन्तु ये प्रयत्न जिस ढंग से किये जा रहे हैं उनसे तो यही
आशंका होती है कि ये हिन्दी का वर्तमान स्वरूप बिगाड़
ही छोड़ेंगे। संक्षेपमें इनके मत की समीक्षा करलेना

गल्प-गुच्छ

माता और विमाता

लेखक

श्रीयुत—'कुमार'

मैंने इसी वर्ष लखनऊ गवर्नमेन्ट कालिज से Inter-mediate पास करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय के B. A क्लास में प्रवेश किया था। गर्मी की छुट्टियां शुरू होने वाली थीं। कालिज बन्द होने को थे। वाइस चान्सलर ने यूनिवर्सिटी के स्थापना-दिवस के उपलक्ष्य में आज से तीसरे दिन सब अध्यापकों और विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय में उपस्थित रहने का आदेश किया। प्रायः सभी संगी साथी इधर उधर की दूर दूर की लम्बी लम्बी यात्राओं की फिक्र में थे। बहुतों ने कलकत्ते से रंगून जाने वाले एक 'इंगलिश स्टीमर' में अपनी अपनी जगह रिजर्व भी करा ली थी। कई दल Concession ticket मंगाकर हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहरों की सैर को जाने की तैयारी में थे। धार्मिक ख्यालात के कुछ हिन्दू विद्यार्थी अपने प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा के लिये 'तीर्थ यात्रा ट्रेन' के टिकट खरीद चुके थे। कुछ अपने अपने घरों को जाने के लिये लालायित थे। माता-पिता, भाई-बहन तथा निकटवर्ति सम्बन्धियों का प्रेम उन्हें आकृष्ट कर रहा था। अतः वे सब कालिज 'प्रीति-भोज' की प्रतीक्षा में थे। लेकिन मेरा

* *

दूसरा कुछ और ही था। न तो मैं कभी बाहर सैर के लिये जाना पसन्द करता था और न मेरा घर की तरह की कोई खास आकर्षण था। मैं सोचता था कि मेरे लिये घर में क्या रखा है। माता-पिता घर में थे सही किन्तु पिता का दिन तो दफ्तर में ही गुजरता था, और माता-पिता से भी मेरा कोई विशेष परिचय न था। बहन भी आज से कई वर्ष पहले ही ब्याही जा चुकी थी। और कोई भाई-बहन न था जिनके लिये कि मैं वहाँ जाता। किन्तु आज ही पिता की चिट्ठी आई कि 'चिरंजीव! कॉलेज से छुट्टी मिलते ही लौटकर घर चले आओ।' जब से मैंने होश सम्हाला है पिता की आज्ञा को कभी जानबूझकर टाला नहीं। अत जिस किसी तरह जी कड़ा करके 'कालिज डे' मना पहली जुलाई की सुबह की गाड़ी से मैं अपने घर के लिये रवाना हुआ। लखनऊ पहुँचते ही मुझे रामदयाल मिल गया। उसे मैं खूब चाहता था। क्योंकि मेरे बचपन से ही वह पिता का एक वफादार खिदमतगार था। आज पूरे आठ वर्ष बाद घर के द्वार पर विशाल ने मेरी अगवानी की। माता को प्रणाम कर मैं सीधा पिता के बैठक खाने में चला गया। दोप-हर का वक्त था। पिता दफ्तर गए हुए थे। इतने ही में न जाने कहाँ से मेरा पुराना कुत्ता 'मोती' भी मेरी गन्ध पाकर हाँफता हुआ आ पहुँचा। मैं उसे थपथपाने लगा और थोड़ी थोड़ी देर बाद प्रेम से उसकी पीठ भी सहला देता था। कभी सूंघ-

आवहे ढूंढ ढिला/ढेला कर अपनी भक्ति प्रदर्शित कर रहा था। बीच बीच
में कभी कभी वह मेरा हाथ भी चाट लेता था। इस तरह मेरे थोड़ी सी
देर पुचकारने लेने पर 'रामदयाल' ने आकर कहा बाबू। चलो खाना
तैयार है। छूटे खिदमतगार के इन प्यार भरे शब्दों का मैं निरादर
न कर सका। अच्छा एक उठ खड़ा हुआ। नहा धोकर कपड़े बदले,
खाने को तैयार हुआ। इतनी देर में उसने मेज कुर्सी लगा कर
भोजन का थाली भी तैयार कर दिया था। थाली सामने आई
और मैंने भोजन कर लिया। शेष भोजन मैंने मोती को दे दिया।
वह तत्पर उसे साफ कर गया। मुझे प्रतीत हुआ कि कोई न कोई मेरा
'मोती' रोज भूखा रहता होगा। नहीं तो अभी 10 बजे मिला के साथ
रोटी खाकर इतनी जल्दी भूख लगना नामुमकिन है। मेरा दिल
उस निरपराध मूक प्राणी की व्यथा से सिहर उठा। खैर
तत्पर हाथ धोकर बैठक में आ अपने साथ लाया अंग्रेजी
पत्र Leader आराम कुर्सी पर लेट पढ़ने लगा।
पत्र खुला हुआ था। न मालूम कब मुझे नींद न आ गई। मैं
सो गया और खूब गहरी नींद सोया। घड़ी ने टन टन टन टन
करके चार बजाए। मेरी नींद खुली। मैं आँखें मल
कर उठ बैठा।

2

मैं अभी बाहर जाने की तैयारी में ही था कि पिता 'श्री' पर

अपने चार पाँच मित्रों के साथ चार बजे आ गए। मेरे आने की खुशी में
उन्होंने अपने ऑफिस के बाबुओं को एक 'पार्टी' दी थी। इनमें
से कुछ तो मेरे परिचित थे ही। बाकी दो एक नये भी थे। बैठक
में आने पर मैंने खड़े होकर पिता का अभिवादन किया और
रोज सबसे भी हाथ मिलाया। ये भी पढ़े लिखे तथा अच्छे खानदान
के लगते थे। घण्टे भर तक बैठक में बहुत हा-हा होता रहा। कोई पाँच
बजे आकर बूढ़े सेवक ने पिताजी से अर्ज़ की हुज़ूर। अन्दर चलें
सब कुछ तैयार है। हाथ धोकर हम सब सजे हुए एक सुन्दर
'हाल' में पहुँचे। और कुर्सियाँ खींचकर एक 'राउंड टेबल' के
चारों ओर बैठ गए। खानसामा ने आकर चाय बिस्कुट,
टोस्ट केक फल और मिठाइयों की तश्तरियाँ हाज़िर की। सबने
होटलवाले की तारीफ़ करते हुए बढ़िया मिठाई पर खूब हाथ साफ़
किये। घड़ी 5½ बजा रही थी। अब मैंने आजकल चलने वाली
एक शानदार तथा बढ़िया सामाजिक फ़िल्म 'पूर्णिमा' देखने
का प्रस्ताव किया। सभी शौकीन थे। अतः किसी को क्या उज्र
होता। झटपट तैयार होकर हमारी कार ने हमें (Majestic
Picture House) के सामने लाकर खड़ा किया। निःसन्देह कोई
अच्छा खेल होगा। था उस दिन सिनेमा के 'आर्टिस्ट' की
तरफ़ से बाहर के प्रमुख व्यक्तियों को 'फ्रीपास' भी बाँटे जाते थे।
अतः 'फ़र्स्ट क्लास' के दो पास तो हमारे पास थे ही। पाँच टिकट

आने वाली सभी आपदाओं का मैं भी एक साझीदार था। स्वभाव से तो मैं तो मन का मौजी था। लेकिन इस तरह रहते रहते भी न जाने क्यों ज्यों ज्यों समय गुजरता जाता था त्यों त्यों मेरा मन घर से उचाट होता जाता था। पहले तो मैंने निश्चय किया कि चलो किसी तरह अपनी छुट्टियों के तीन महीने यहीं गुजार दूं। फिर एक ही माह बाद मुझे मालूम होने लगा कि मेरा यहां पर रहना कठिन है। उन्हीं दिनों कलकत्ते में 'ओलम्पिक हाकी टीम' का एक 'शो मैच' होने वाला था। अतः मैंने सोचा कि पिता से आज्ञा लेकर उसे देखने चला जाऊं। इस तरह छुट्टियों के कुछ दिन तो आराम से कट जाएंगे। साथ में यह भी सोच लिया था कि यदि पिताजी बीच में कोई बाधा उपस्थित की तो भी मैं यहां से किसी तरह चला ही जाऊंगा। इन्हीं चिन्ताओं और विचारधारा झूलते रहने से एक दिन मैं बीमार पड़ा। मुझे चारपाई पकड़ लेनी पड़ी। यद्यपि पिता ने अच्छे अच्छे डाक्टरों को दिखा कर दवादारू का पूरा इन्तजाम कर दिया था तथापि बीमारी में कोई फर्क नहीं पड़ा। इस तरह पड़े पड़े मुझे कई दिन गुजर गए। और आज ६ का दिन हो जाने पर भी मेरी पिताजी ने कभी भूल कर भी मुझसे प्रेम के दो शब्द न कहे। मैंने जब भी देखा उनकी भृकुटि चढ़ी ही नजर आई। मेरी यह हालत हो जाने पर भी वह मेरा हाल तक पूछने न आई।

और न मैं ही उसे भुला सका। उसका मृदु हृदय हीन निष्ठुर व्यवहार देख-
कर मैं सहन न कर सका। अभी हाल ही में गुजरी हुई उसकी सब बातें
एक एक करके मेरे सामने आने लगीं। और साथ ही साथ मुझे घर
में बिताना पड़ा। जिसमें अपनी वास्तविक स्थिति का भान होने लगा।
मेरे मन में आया कि क्यों कि मैं उससे डरता हूँ अत बात भी नहीं
कर सकता। पिता से इसलिये कुछ नहीं कह सकता कि वह कहती हैं
कि तू मेरी गुलामी करता है। आखिर मुझसे बातचीत करने वाला
कोई तो चाहिये था। मैं अपने पड़ोसियों के पास जाता हूँ तो वह
समझती है कि मैं [illegible] हूँ। घर बैठता हूँ तो मैं उसके रास्ते का
काँटा बनता हूँ। वह चाहती है कि मैं उसकी आँखों से ओझल
हो जाऊँ। यदि मैं बाहर ज्यादा समय बिताता हूँ तो वह कहती हैं
कि मैं उससे प्रेम नहीं करता। जो कम सोता हूँ तो कहती है
कि क्यों हमारी नाक कटाता है। क्या मैं तुम्हें खाने को नहीं
देती। अगर ज्यादा खाता हूँ तो मुझे सुनना पड़ता है कि मैं दिन
भर बैठे रोटियाँ फाड़ा करता हूँ। यदि मैं कुछ ऐसे भी काम किया
करता हूँ तो कहती है कि बड़ा उल्लू सा है। मुँह फूट गया है
क्या। दिल खोलकर बात ही नहीं करता। यदि मैं बोलता हूँ
तो कहती है कि हमारी भी नाक कटाता है। और बड़ा बेदर्दी सा
रुपया फूंक रहा है। यदि वह अच्छे कपड़े पहने देखती है तो
बोल पड़ती है कि पर लग गए हैं। और मामूली पुराने कपड़ों में

युद्ध करते हुए मैं कुछ नहीं करता, क्योंकि मैं अंध रूप मशीनरी की न्याईं अनमना होकर किसी पर शक्ति द्वारा प्रेरित हुआ हुआ ही कर रहा हूँ स्वयं नहीं। वास्तव में मैं एक स्वत्वहीन एक प्राणी हूं। मुझे मेरे अस्तित्व में भी सन्देह है। यह तो मेरे जीवन का एक पहलू है।

८

आज मेरी तबियत कुछ ज्यादा खराब है बुखार तो तेज था ही और उस पर यह सिर दर्द भी, मेरा सिर दबाने वाला कोई नहीं। ~~[illegible]~~ राम-दयाल भी इस वक्त घर पर मौजूद नहीं। टेलीफोन खराब होने से शायद वह सिला को मेरी बीमारी की इत्तिला देने बाजार गया हुआ है। विश्व कवि टैगोर के 'पोस्टमास्टर' की तरह मुझे भी किसी कोमल कर स्पर्श की आवश्यकता अनुभव हुई। मैंने अपनी निमला को आवाज दी परन्तु अन्दर से कोई जवाब न मिला। शायद वह घर पर नहीं है मेरी चुगली करने वाले पड़ौस में गई हुई है। सहसा मुझे अपनी माता का स्मरण हो-आया। उसका प्रातःस्मरणीय परमपुनीत नाम लेते ही क्षण भर के लिये मैं उन सब शारीरिक व्यथाओं से मुक्त होगया जिनके कारण मेरे मन में एक अकथनीय ग्लानि पैदा हो रही थी। नाम स्मरण की आराधना करते करते प्रेम तथा वात्सल्यमयी के चिरकालीन स्मृतियां एक एक करके मेरी आँखों के सामने नाचने लगी। मैं सोचने लगा कि मेरी अम्मा को मरे अभी ५-६ साल से ज्यादा नहीं हुए। उसकी जन्मस्मृति आज भी मेरे लिये ताजी है, मैं उसे भुला दे

नहीं भूल सकता। जितना भी ज्यादा भुलाने की कोशिश करता हूं उतना
ही ज्यादा उसकी सुमधुर स्मृतियां रह रह कर मुझे सुखमय अतीत की
याद दिलाती हैं। वे दिन भी मुझे याद हैं जब कि रात दिन मेरा मलमूत्र
उठा कर भी वह ममतामयी माता कभी थकती न थी, हार न मानती थी।
पहले मुझे खिलाकर फिर किसी दूसरे व तीसरे को परोसती थी।
घर में कोई नई चीज आ जाने तो उसमें से सबसे पहले मुझे ही
मिलता था। उसने मेरे आराम के लिये क्या क्या नहीं किया। कौनसी
ऐसी तकलीफ है जो उसने न सही। उसने मुझे अच्छे से अच्छा खाने
को और अच्छे से अच्छा पहनने को दिया। आप फटे पुराने चीथड़े
पहन कर मेरे लिये रेशमी वस्त्र जुटाये। आप रूखी सूखी खाकर
मुझे मालपुए और मोहन भोग खिलाया। अर्थात् जब जब और जो जो
मैंने चाहा वही हुआ। मेरी प्रत्येक मुराद पूरी की गई। उसने मुझे ९
मास तक अपने गर्भ में रखा था। मेरे पैदा होने पर भी निरन्तर
जगी थी। उसी का अमृतमय स्तन्य पान कर मुझमें शरीर का सञ्चार
हुआ था। होश सम्भालने के बाद से उसकी मृत्युपर्यन्त मेरे जीवन की
एक एक घड़ी चैन से गुजरी थी। अगर मेरे नाक कान में थोड़ा
सा भी दर्द हो गया तो उसने जागते जागते रातें काटी, दिन रात
मुझे गोद में चिपटाये रही, कमजोरी की वजह से मेरी तन्दुरु-
स्ती पर या दुर्बलता के मारे कुछ भी फर्क सी आ जाती थी, वह
मरी सी बन जाती थी। रात को चोर का डर लगने से मुझे वह अपनी बगल

थालीसे अलग रखती थी। स्कूल से लौटने पर प्रति दिन वह दरवाजा पर
खड़ी मेरी प्रतीक्षा किया करती थी। अगर कभी मुझे स्कूल या बाजार
से लौटने में देर हो जाती तो वह मेरे लिये मछली की तरह तड़प उठती
थी। मामूली पढ़ी लिखी होने पर भी मेरी पढ़ाई पर उसका पूरा पूरा
ख्याल था। रोज का पाठ वही मुझे याद कराया करती थी। बातों
ही बातों में खेल कूद और लड़ाई में उसने मुझे रामायण और महा-
भारत की कथाएं सुनाई थी, इत्यादि — आदि न जाने मेरी कभी
मेरे साथ कितने अभ्यास होता तब तक थी।

५

मैं अभी इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि सहसा ज़ोर से हवा
चलने लगती है। और एकाएक कोई चीज़ खट से मेरे बिस्तर पर आ
गिरी। वह एक फटी पुरानी छोटी सी तस्वीर थी जोकि अन्य सुन्दर
तस्वीरों के साथ मेल न खाकर एक कोने में जीर्ण शीर्ण रस्सी के
सहारे उलटी लटकी हुई थी। अकस्मात् ही प्रचण्ड पवन के झोंकों
से रस्सी टूट जाने से वह मेरे पास आ गिरी थी। ज्यों ही मैंने उसे
उठाकर झाड़पोंछकर देखा तो साक्षात् देवीरूपिणी एक पत्र-
प्रतिमा को अपने सन्मुख पाया। मैंने देखा कि विमाता ने मेरी
माता की (अपनी सौतिन की) तस्वीर पर कालिख पोत कर उसे
उलटा दिया था। बरसों तक उसे झाड़ पोंछा तक न गया था।
ताकि उसको या अन्य किसी को उसकी सौत की कुरूपी सूरत न

* *

दिखाई पड़े। अपनी विमाता का यह हृदय हीन निष्ठुर व्यवहार देख-कर सहसा मेरे मुंह से एक ठंडी आह के निकल पड़ा 'अम्मी! मेरी-प्यारी-अम्मी'। बचपन से ही मैं अपनी माता को अम्मी कहकर बुलाता था। क्यों कि अम्मी कहने में तो मुझे एक स्वाद मिल जाता था। अब आज बरसों बाद अपनी 'अम्मी-प्राणप्यारी अम्मी की तस्वीर हाथ लगने से मैं जी भरकर बहुत ही चावों से उसकी मधुर कान्ति न जाने कब तक निहारता रहा।

मैं नई धोतीकी आशामें शिवतांडव छोड़कर घर भागा। घर पहुंचते ही पिताजीने कुछ ताने मिश्रित परिहासमें कहा- "ले धोती पहिन लेफिर जायगा बन पण्डित" और इसके बाद उन्होंने एक ऐसा शब्द बोला जिसे मैं आपके सामने नहीं कहसकता और उस शब्दके पीछे "धोनेका सहूर नहीं और आया धोती पहिनने" यह कहकर अपना परिहासपूर्ण प्रेम वाक्य समाप्त किया। बात यह थी कि सप्ताह भर पूर्वही उन्होंने मुझसे पूछा था कि 'गुरुकुलमें पढ़ने जायेगा या नहीं- मैंने उत्तरमें सशंक होकर पूछा कि - गुरुकुल कहां है और वह क्या होता है। पिताजी ने मेरी शंका निवारणार्थ गुरुकुलकी तारीफके पुल बांध दिये। सब ब्रह्मचारियोंको दूध मेवा आदि खानेको मिलता है। दोपहरको मिठाइयां मिलती हैं - तिसरे पहर कुछ फल आदि मिलते हैं और सायंकाल पुनः भोजन मिलता है। [illegible] मिलता है। ब्रह्मचारी तो दूधके [illegible] [illegible] मिलते हैं। [illegible] [illegible] नहीं रहता। सब ब्रह्मचारी भाई २ की तरह मिलकर रहते हैं।

स्कूलके अध्यापकने मुझे मार मारकर इतना भय भर दिया था
इसलिए अध्यापकका नाम सुनकर डरना स्वाभाविक था।
मैंने पिताजीसे पूछा – क्या वहाँ पर भी अध्यापक पढ़ाते हैं।
क्या वहाँ भी स्कूल है और यदि है तो मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।
पिताजीने धैर्य बंधाते हुए कहा कि वहाँ ऐसे अध्यापक नहीं
होते वहाँ तुम्हारे ऊपर अधिकारी रहेंगे और अध्यापक पढ़ायेंगे
वे सब बच्चोंपर मातापिताके समान ममता दिखाते हैं।
स्कूलमें कोई नहीं मारता और यदि कोई दंड देता है तो
सुधारकी भलाईको ही लक्ष्यकर देता है। यद्यपि इन बातोंसे
मुझे सन्तोष न हुआ तथापि वहाँकी खानेपीनेकी तारीफ
सुनकर तथा स्कूलके भयसे मैंने [illegible]

[illegible]

आगे हाथकर खड़े जाते थे और बोले - बहुत अच्छा और
बोलो। मैं यदि कभी ऐसे मौकेपर उपस्थित होजाता
दिल कांपता रहता था और सोचा करता था कि पतानहीं
राजा साहब क्या दंड देंगे। इसीप्रकार मास्टर साहिबको राजा
मानने का एक कारण और भी था। घरपर जब कभी माताजी
किसी राजाकी कहानी सुनाती तो उसमें यह भी कहा करती
थी कि सबलोग राजाको अपनी खेतीकी उपजमें से
कुछ देते हैं और बदलेमें वह देशकी रक्षा करता है,
ठीक यही बातको मैं स्कूल मास्टर परभी घटते हुए
देखता था, जब कोई त्यौहार स्कूलसे लौटनेपर
पता लग जाता कि वे तो सिर्फ कुर्सीकी तरह उनकी
शिक्षाकी भेंट लेकर आया करते थे। परीक्षा पास होती थी-
तब विद्यार्थी अपने घरोंसे भीजी. केला. बैंगन आदि
लालाकर मास्टरजीको देते थे और मास्टरजी उन चीजों को
पाकर बहुत खुश नज़र आते थे। उनको राजा मानने का एक
बड़ा कारण और भी था। मास्टर साहब जातिके ब्राह्मण थे
इसलिये श्रावणी, एकादशी आदिके दिन बच्चे पांच तोला
गुड़/शक्कर और चावल लेलेकर आपकी पूजाके नज़राना

लेने निकलते थे। जब मैं बाहर पहुँचते थे तब प्रत्येक स्थल
जब महाराज बाहर उन्हें बिठाता था और छन्द सुपे में
कुछ चावल और कम पैसा रखकर उनकी झोली में
डाल देता था तथा लौटने में भी कुछ घी खाना देता था।
इसी प्रकार अन्यानी ब्राह्मण के जिन्होंने मेरे मन पर
यह अच्छी तरह बिठा दिया था कि यदि दूसरा कोई राजा
है तो वह हमारा स्कूल मास्टर। इसी प्रकार कुछ लड़कों ने
जब प्रश्न किये जब मैं उनसे विदा लेने लगा तो बहुतों ने
अपनी अपनी जेबों से बेर निकालकर मुझे दिये - मैं बेरों को
पाकर बहुत खुश होकर मन में सोचने लगा कि कहीं इन्होंने
मुझे भावी राजा समझकर तो नज़राना नहीं दिया।

रात की गाड़ी से जाना था और पढ़ाई जब कुछ
समाप्त था तो भी माताजी ने सामान बाँधने के लिये रख
दिया था। मैं तांगे में बैठकर स्टेशन आया। गाड़ी चलने से
पहिले माता बहिन आई। गाड़ी चली और [illegible]
हम सूरत पहुँचे वहां पिताजी को देखकर और फिर
उनके साथ भी दो [illegible] थे। जो हमारे साथ भी आये थे।
इनसे चलकर हम सब ~~कुछ पहुंचे~~। हरिद्वार पहुंचे।
स्टेशन पर उतरते ही पण्डों ने घेर लिया बड़ी मुश्किल से
उनसे पिंड छूटा। आखिर आने पर एक बाहर
मेरी टोपी उड़ाकर ले गया था।

जैसे तैसे गुरुकुल पहुंचे। उत्सवकी खूब जोरोंसे तैयारियां होरहीथी। उत्सव के तीसरे दिन हम सबका मुंडन कराया गया। परन्तु उस उपनयनके समय भी दूध और पेडा मिला। अगले दिन खीर खिलाकर अन्य तीन गुजराती साथियों के साथ यज्ञमंडपमें आया। श्री आचार्यजी ने सबका 'वेदारंभ–संस्कार' किया। संस्कार के बाद हमें जनता में झोली लेकर भीख मांगने के लिये छोड दिया। यद्यपि रुपये थोडे मिले। वे सब हमने स्वामीजी के चरणों में लाकर चढाये। अब सोचता हूं कि यदि उनमें से दो तीन रुपये बचाकर रखलिये होते तो क्या अच्छा होता। उत्सवके बाद पढाई आरंभ होगई। हम पंक्ति बनाकर विद्यालय पहुंचे। गुरुजी आये। सबने खडे होकर नमस्कार किया। पढना प्रारंभ करनेसे पहिले उन्होंने प्रत्येकको बुलाकर बडे प्यारसे नाम पूछा और सबकी पुस्तकें देखकर पढाना प्रारंभ किया। इसीप्रकार प्रत्येक अध्यापकने पढाना प्रारंभ किया। प्रथमदिनकी पढाई देखकरही खूब जैसे अनुभव हुआ परन्तु

थोड़े दिनों तो दूध कटोरे से पीते रहे पर पीछे से जी उकताने पर नज़र बचाकर पृथ्वी माता को पिलाने लगे। भोजन के समय अधिकारीलालजी साथ रहते थे। पहिले तो कुछ पथ्यापथ्य रोटी खाते थे पर जब बीमार पड़ने लगे तब उन्होंने रोटी का निषेध कर दी। उन दिनों यह बात अवश्य बुरी लगती थी पर जब अब कभी इस जीवन में उनका अधिकारीलाल महोदय की इस कर्तव्य परायणता की याद करता हूँ तो बरबस आंखों से आंसू निकल पड़ते हैं।

एक दिन हम चंडी पर घूमने गये। लौटते समय मैं थक गया और अन्य साथियों से पिछड़ गया। यह देखकर अधिकारीलालजी ने गोद में उठा लिया। इस प्रकार मैं उनकी घुड़सवारी करके गुरुकुल पहुंचा। इसी प्रकार एक रात मेरे पेट में दर्द उठा। मैं रोने लगा। मेरा रोना सुनकर वे आए और उन्होंने पंजाबी मीठी बोलियों में मेरे रोने का कारण पूछा और शीघ्र डाक्टरजी को बुला भेजा। डाक्टरजी दवाई करके चले गए। तब भी वे मेरे पेट का सेक करते हुए आधी रात तक मेरे पास बैठे रहे।

थे यद्यपि शरीरसे दुबले थे तथापि खेल कूदमें भी वे जवानोंसे
किसी भी प्रकार हिम्मत न हारते थे। पढ़ाईके समयमें पढ़ाई पर जोर
रखते थे और खेलके समय खेल पर जोर रखते थे।

जब हम पांचवीमें थे तब दिल्ली से एक पार्टी हॉकी खेलने-
के लिये आई। यह पार्टी मॉडल स्कूलकी अर्थात् हमारी आली-
शानके खिलाड़ियों की थी और हमसे पांचवी कक्षाके बच्चे खेले थे
हमने उन्हें ५-६ गोलोंसे हराया। उस पार्टीके साथ जो मास्टर आये
थे वे हमारी खेलको देखकर बड़े प्रभावित हुए।

(अपूर्ण)

बाद मुझे खर्र खर्र की आवाज आई। मैंने समझा, शायद उन पत्तों पर कोई कुत्ता आकर बैठा है। परन्तु आवाज काफी देर तक रही। मैंने कुतूहल वश पीछे देखा। एक काला भूत-सा चूहा तेरी चुंदी को अपनी दूध वाली कटोरी में भर चुका था। मैंने उसे छून, छून, छून छून छुआई। बहुत बहुत बहुत पीटा। परन्तु, उस समय उसकी दयनीय दशा देख कर तेरी चुंदी का खिल लेने का साहस न हुआ। शायद नई था, जिसलिये ही खरीदा था।

यह सुन कर शान्ति अपने बिखरे हुए टिकटों को अपने में रखने लगा।

इसके बाद उसने एक गिलास में पानी भरा। जेब से पुड़िया निकाली, पुड़िया का सफेद चूर्ण खरा खरा करता हुआ गिलास में जा गिरा। इसको वह हिला हिला कर पीने लगा। मैंने मांगा, परन्तु सीधा नहीं ... मार दिया कि नहीं देगा। मैंने बहुत अनुनय विनय की। एक दूसरी प्रतिमा उसने मेरे गिलास में उड़ेल दी। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ उसकी प्रशंसा करने लगा।

मैं एक घूंट पीते ही घुमड़ने लगा। मैंने कहा, "स्पैनिल लगता है। शराब का भी कोई स्वाद होता है।"

वह हँसता रहा।

"ये महाशय हंस रहे हैं। मेरा मुंह कड़वा हो गया" मैंने कहा। अपने आप को रोक न सका। अब उसने एक और का तमाशा जड़ दिया। ऐसे समय बड़ा ही आनन्द आया। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और हंसता ही रहा।

इसी समय मेरी नींद उचट गई। सामने खड़े मेरा हाथ पकड़े, श्री शान्ति जी कुलीन जी, बोतल सम्भाले खड़े थे। इधर उधर से हंसने की आवाज आ रही थी।

धोखा

अनुवादक ब्र० हरिदत्तजी
उपस्नातक

मुझे रह रह कर कल शाम की घटना याद आती है और यह देख कर रंज होता है कि रणधीर के साथी ने मुझे किस तरह बेवकूफ बनाया। परन्तु यह सोच कर थोड़ी सान्त्वना भी होती है कि सभी कभी न कभी तो बेवकूफ बनते ही हैं। कल शाम हम भूतों की बातें कर रहे थे प्रायः सब ने बीती घटनायें सुनाईं। पर किसी भी घटना ने हमें प्रभावित नहीं किया। हमारी गोष्ठी में आज कुछ नवागन्तुक भी थे। इन में से एक मझले कद के, सांवली शकल के, लम्बी नाक के पतले युवक 'रहमीन' को रणधीर आज यहाँ लाया था। वह प्रत्येक वक्ता के कथन को बड़े ध्यान से सुन रहा था। परन्तु उसने अभी तक कोई बात न सुनाई थी। बातचीत में उसे शामिल करने के इरादे से भगत ने उससे पूछा - क्या आप को ऐसा कोई विचित्र अनुभव हो हुआ है।

थोड़ी देर तक वह सोचता रहा या रहा हु-

था। सोचने और देखने के सिवाय मैं कुछ नहीं कर सकता था। हर समय यह चेहरा मेरे विचारों के सामने घूमता था। थोड़े दिनों में मुझे वह चेहरा व्यक्तित्व से भरा लगने लगा। वह ऐसा चेहरा था जिसे मैं हजारों आदमियों के बीच में से भी पहचान सकता था।

मैं जब अच्छा हुआ तो इस चेहरे ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। मैं इसे ढूंढने के लिये गलियों में घूमा। मुझे विश्वास था कि वास्तविक व्यक्ति कहीं अवश्य है; मुझे उस से अवश्य मिलना चाहिये। ऐसा विश्वास क्यों था यह मुझे नहीं पता। मैं तो सिर्फ यही जानता था कि वह और मैं भाग्य से एक डोर में बंधे हुए हैं। मैं उन स्थानों पर जाने लगा जहां मनुष्य प्रायः इकट्ठे होते हैं। राजनैतिक सभाओं, फुटबॉल के मैचों तथा रेलवे स्टेशनों पर मैं उसे बहुत ढूंढता था। पर सारी कोशिश बेकार साबित हुई। उस समय मुझे अनुभव हुआ कि मनुष्यों के चेहरे कितने अभिन्न हैं और कितने कम। सब चेहरों में थोड़ा बहुत फर्क है पर इन्हें यदि श्रेणियों में बांटा जाए तो इन की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। मैं उस चेहरे को ढूंढने के पीछे पागल हो गया। मुझे और किसी चीज़ की परवाह न रही। मैं सड़कों पर जाकर लोगों को घे

तक देखा करता था। नौबत यहाँ तक आपहुंची कि लोगों ने मुझे पागल समझकर मुक्त कर दिया। पुलिस वाले मेरे पर शक करने लगे परन्तु स्त्रियों को मैंने कभी नहीं देखा, सिर्फ आदमियों के ही चेहरे मैं देखा करता था।

उस ने माथे पर हाथ फेरा और कहता गया "अन्त में मैंने उसे पहिचान ही लिया। वह एक तांगे में जारहा था। मै उस तांगे के पीछे भागने लगा। इतनेमें सामने से एक खाली तांगा आता दिखाई दिया। चिल्लाया कि अगले तांगे का तेजी से पीछा करो और मैं कूद कर उस तांगे पर सवार हो गया। तांगे वाले ने अगला तांगा नजर से ओझल न होने दिया और हम लाहौर स्टेशन पर आ पहुंचे। मै प्लेटफार्म की ओर दौड़ा और वहीं मेरा आदमी दो स्त्रियों और एक लड़की के साथ वहाँ पर घूम रहा था। वे २-२० की गाड़ी से रंगून जा रहे थे मैंने उनसे बात करने की कोशिश की पर सफल न हुआ। उस के और मित्र आगये थे और वह उन के साथ गाड़ी में सवार हो गया। वह रंगून जा रहा था" मैंने जल्दी से कलकत्ते का टिकट खरीदा। मुझे आशा थी कि मैं कलकत्ते में जहाज पर चढ़ने से पहले पकड़ लूँगा, पर कलकत्ते में वह मेरे पहुंचने से पहले ही जहाज पर चढ़ गया। वह एक प्राइवेट सैलून में था।

इस से मैंने अनुमान किया कि वह कोई धनी व्यक्ति है।

मैं हिम्मत नहीं हारा। मैंने भी जहाज पर जाने का निश्चय कर लिया। मुझे पूरी आशा थी कि जहाज चलने पर वह अकेला डेक पर घूमने के लिये अवश्य निकलेगा। रंगून तक का एक ओर का किराया मेरे पास था। मैं जल्दी ही हार मानने वाला आदमी न था। मैं सैलून के दरवाजे पर खड़ा हो गया। और इन्तजार करने लगा। आधे घण्टे के बाद दरवाजा खुला और वह बाहर निकला पर उस के साथ उस की छोटी लड़की भी थी। मेरा हृदय जोर से धड़कने लगा। चेहरा पहचानने में कोई गलती न थी- इस की एक एक रेखा उसी दिवार वाले चेहरे से मिलती थी। उस ने मेरी ओर देखा और मुड़कर ऊपर के डेक की ओर बढ़ा। मैंने अनुभव किया कि फिर ऐसा मौका मेरे हाथ नहीं लगेगा।

"मुझे माफ करें" मैं झिझकते झिझकते बोला- "क्या आप अपना परिचय पत्र देने की कृपा करेंगे? मुझे आप से अत्यावश्यक पत्र व्यवहार करना है।"

" वह बड़ा हैरान हुआ पर मेरी बात उसने मान ली। बड़े विचार के बाद उसने परिचय पत्र निकालकर मुझे दिया और वह लेकर जल्दी से मैं वहाँ से चलता हुआ। यह स्पष्ट था कि

* *

उस ने मुझे पागल समझा और मेरी बात को पूरा करने में ही अपना कल्याण माना।

परिचय पत्र को पाते ही मैं जहाज के अगले कोने में मैं जाकर इसे पढ़ने लगा। मेरी आँखों के आगे अंधेरा आ गया, मेरा सिर घूमने लगा क्योंकि उस पर मि. रामचन्द्र ~~का~~ यह नाम लिखा हुआ था और साथ में माण्डले जेल का पता दिया हुआ था। इस के बाद क्या हुआ यह मैं नहीं जानता। जब मैं होश में आया तो मैं रंगून के अस्पताल में था। वहाँ पर मैं कुछ सप्ताह बीमार रहा और एक महीना पहले यहाँ वापिस लौटा हूँ।

वह चुप था।

हम एक दूसरे को देख रहे थे और अगली बात की प्रतीक्षा कर रहे थे। क्रोध की शेष सारी बातचीत इस घटना के आगे तुच्छ जान पड़ी।

उस ने कहना शुरू किया – मैं वापिस रामगली में पहुंचा और उस जेल के विषय में और अधिक खोज करने लगा। मैंने माण्डले चिट्ठियां लिखीं। जेल ~~के~~ सम्पादकों को लिखा। लाहौर में रहने वाले व्यक्तियों से मैंने भी की। परन्तु मुझे केवल इतना ही पता लगा कि वह एक लखपति है उस के माता

भारतीय थे और लाहौर में रहते थे। पर लाहौर में वे कहां रहते थे - इस प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिला।

"समय बीतता गया"। कल सवेरे मैं रात को थका होने से देर तक सोता रहा। जब मैं उठा तो सूर्य की किरणें मेरे मुख पर पड़ रही थीं। मैंने एक दम चेहरे वाली दीवार को देखा जैसा कि मैं प्रतिदिन किया करता था। मैंने अपनी आंखें मसलीं, मेरी हैरानी का ठिकाना न था। वह चेहरा कुछ अस्पष्ट हो गया था। पिछली रात को मैंने इसे बिलकुल स्पष्ट देखा था। अब उस की छाया मात्र ही रह गयी थी।

मैं अनमना होकर बिस्तर से उठा और निकला। सार्वदेशीन पत्रों के प्रातः संस्करण निकल चुके थे। मैंने एक अखबार में यह शीर्षक देखा — "नयी लखपति की मोटर दुर्घटना"। आप सब ने भी पत्रों में यह देखा ही होगा। मैंने इसे खरीदा और जो कुछ मुझे पढ़ना चाहिये था मैंने पढ़ा। माण्डले के लखपति अपने दल के साथ रंगून से माण्डले की ओर मोटर से जा रहे थे। मोटर एक गाड़ी से टकरा कर उलट गयी। मि. राम की दशा नाजुक है।

मैं फिर अपने उसी कमरे में आया। बिस्तर पर लेट कर दीवार पर बने चेहरे को देखने लगा। थोड़ी देर के बाद वह चेहरा बिलकुल लुप्त होगया।

. . . .

"पीछे मुझे पता चला कि इसी समय मि० राम का देहान्त हो गया था।

वह चुप हो गया था।

हम ने कहा - यह कहानी तो बहुत अद्भुत, आश्चर्यजनक और अनोखी है।

जी हाँ - मुझे तो तीन बातें बहुत ही अनोखी जान पड़ती हैं, नवागन्तुक ने कहा - पहली तो यह कि लाहौर के एक मकान में मर्म के एक आदमी का ऐसा चेहरा बना हुआ हो, जिस का सम्बन्ध मृत्यु से भी हो। विज्ञान को इस गुत्थी को सुलझाने में अभी बहुत समय लगेगा। दूसरी बात यह है कि उस आदमी का नाम उस स्थान से सम्बद्ध हो जहाँ कि उस का चेहरा बना हुआ था। ठीक है न?

हम उस से सहमत थे। हमारी भूतों की बातें फिर ज्यादा जोश के साथ शुरू हो गयीं। इसी बीच में वह नवागन्तुक उठा और वहाँ से चल पड़ा। अभी वह दरवाजे पर ही था कि सूर्य ने उस से पूछा - तीसरी कौन सी अनोखी बात है?

"ओह! तीसरी बात" दरवाजा खोलते हुए उस ने कहा "यह तो मैं भूल ही गया था। इस कहानी के बारे में तीसरी अनोखी बात यह है कि मैंने आध घण्टा पहले ही इस कहानी को तैयार किया था। अच्छा, नमस्ते।"

जब हम कुछ संभले तो हम तस्वीर पर देख रहे थे। पर वह भी वहाँ से गायब था।

आजन्म-वैरागी

लेखक

ब्र. मतिमान् जी

उपलोतक

उन दिनो मगध और बंगाल मे राजा महीपाल का राज्य था।

उस के आधीन सामंत राजा कल्याण श्री विक्रमपुरी में राज्य करता था - पद्मावती उस की पत्नी का नाम था। उस के तीन पुत्र थे - पद्मगर्भ, चन्द्रगर्भ और श्रीगर्भ।

विक्रमपुरी मे एक राजप्रासाद था - उस का नाम "काञ्चनध्वज" था। काञ्चनध्वज

का त्याग और भगवान तथागत की तरह ज्ञानभिक्षु बन कर स्वेच्छा से फकीरी स्वीकार करने का श्रेय कुमार चन्द्रगर्भ के ही भाग्य मे लिखा गया था।

ऐसा महाभाग्य किसी को ही मिलता है। ऐसा सर्वस्व त्याग का महाधर्म किसी किसी के ही भाग्य मे लिखा होता है कुमार चन्द्रगर्भ ने यह मार्ग स्वीकार किया।

२

एक दिन जंगल मे घूमते घूमते उसे यह समाचार प्राप्त हुवा कि महापण्डित जेतारि यही कही पास ही निवास करते हैं।

राजकुमार चन्द्रगर्भ उसे मिलने चल पड़ा। उस के समीप जाकर नम्रतापूर्वक अभिवादन कर बैठ गया।

जेतारि ने पूछा कौन हो?। चन्द्रगर्भ ने

उत्तर दिया - मैं इस देश के राजा का द्वितीय पुत्र चन्द्रगर्भ हू ।

जिसे ऐसी वाणी सुनने की आदत न थी - वास्तव मे बात यह है कि उसे कभी ऐसा सुनने का अवसर ही प्राप्त नही हुआ था - ऐसे जेतारि ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया - हमारे यहां कोई देश नही है कोई स्वामी नही है, कोई दास नही है। यदि तू पृथ्वीपति का पुत्र है तो तुझे यहा से चले जाना चाहिये क्योंकि पृथ्वीपति से हमे कोई मतलब नही है।

कुमार चन्द्रगर्भ ने वैरागी जेतारि के शब्दो में प्रकटित सर्वस्व त्याग के सामर्थ्य को देखा और उस के पैर पकड कर बोला - भगवन्। अब आप ही मुझे मार्ग बताइये। जिस उपासना के द्वारा ~~न कोई~~ सकल संसार में न कोई स्वामी, न कोई

दास रह सकता है उस ज्ञान को मुझे दीजिये।

जेतारि ने कहा इस ज्ञान की उपासना के लिये तुझे भगवान् तथागत की चरणरज से पवित्र नालंदा विद्यापीठ जाना पड़ेगा - उस के बिना यह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

कुमार चन्द्रगर्भ भिक्षु बनने चल पड़ा। नालंदा विद्यापीठ के स्थविर बोधिभद्र के सामने बारह वर्ष की आयु का बालक, आजन्म वैरागी की महाप्रशांत मुख-मुद्रा से जब खड़ा था, और नतमस्तक हो 'श्रमण दीक्षा' के लिये इस ने वस्त्र ग्रहण किये तब किसी को भी यह ख्याल न था कि यह छोटा सा बालक नालंदा विद्यापीठ की दिगंतव्यापिनी कीर्ति फैलाने वाले आचार्य शान्तिरक्षित की तरह, हिमालय से भी परे दूर देशों मे भारतवर्ष का विश्वशांति का संदेश ले जायगा। यह बालक था दीपंकर।।।

कविता कुञ्ज

आज कल

प्रतीक्षा

लेखक

श्री व सत्यभूषण
योगी

सोचती हूँ आज तो
प्रियतम हमारे आयेंगे ही

१

देखता हूँ द्वार की मैं ओर
निश्चल स्तब्ध होकर
स्पष्ट सुनता दूर की भी
मैं सखे लघु पर्ण मरमर

घोरतम में देखता हूँ
आ रहा प्रियतम सलोना

हाय पर तो शुष्क तरु है
जानता हूँ लख अधिकतर

दृढ लिए आशा हृदय में
देखता आशा सभी मैं
आज तो प्रियतम हमारे
रूप कुछ तो खायेंगे ही

सोचता हूँ आज तो
प्रियतम हमारे आयेंगे ही

२

दूर से पगचाप कोई
लघु सुनाई भी मुझे दे
बैठता हूँ रोककर मैं साँस
निज व्याकुल हिया रे
देखता हूँ अन्धतम में
चिह्न कोई दीख जाए
एक-टक हो देखता हूँ
फाड़ अपने युगनयन ये
पर न कोई दीखता है
देखता फिर देखता हूँ
आज निश्चय - तनिक चिर तो
दिल सदा बहलायँगे ही

सोचता हूँ आज तो
प्रियतम हमारे आयँगे ही

३

सुन रहा पगचाप कोई
आ रही है पास मेरे
देखलो वह आगए प्रिय
नाचते हैं प्राण मेरे

सोचता हूँ उठ चरणयुग
ज़ोर से उनके पकड़ लूँ

पर न अभिमानी अहा ये
अग होते साथ मेरे

सामने से गुज़र प्रियतम
ये गए आगे चले हा
आस है कुछ कदम चल फिर
लौट सकरुण आयँगे ही

सोचता हूं आज तो
प्रियतम हमारे आयँगे ही

४

हाय पर मैं देखता ही
रह गया प्रियतम न आए
स्तब्ध सा जड़ सा मृतक सा
हो गया तम मेघ छाए

कर रहा जिनकी प्रतीक्षा
हाय इतने काल से था

दुख है वे पास आए
पर न मैंने कर बढ़ाए

अब दुबारा अगर आवें
झपट कर मैं चरण पकड़ूं
कमल कोमल के कमल पद
हाथ मेरे पायँगे ही

सोचता हूं आज तो
प्रियतम हमारे आयँगे ही

५

क्या कहा मैं झपट का
प्रिय-चरण स्पर्शन को उठूँगा
झूठ बिलकुल मैं उठूँगा
तो मृतक-तन ही उठूँगा
आँख मेरी ये खुली होंगी
निठुर को देख लेंगी
मुँह खुले से दुःख की
निःसीमता में मैं हँसूंगा
उस समय मेरे निठुर प्रिय
आयँगे लखने मुझे तो
सोचता हूँ आत्मभय तब
हाथ निज परसायँगे ही

सोचता हूँ आज तो
प्रियतम हमारे आयँगे ही

— सत्यभूषण 'योगी'

राखी

दिनेश कुमार १२

गुण बन्धन के मृदु तारों से,
यह जाल बनाकर लाई।
नीरस हिय सरसाने किससे,
यह अक्षर माला पाई।

२

सहयोगी हो हिमश्वासों ने,
मूक कली को विकसाया।
मलयानिल ने आज सवेरे,
देख हृदय से अपनाया।

३

वीणा के कलरव की ध्वनि में,
झंकृति को तूने साधा।
मूक अनागत निपदाओं को,
दीप दिखा तूने बाधा।

४

भावी को साकार चित्र में,
अमर बना कर कह डाला।
थके पथिक को कमलदलों की,
शीघ्र बना दी जयमाला।

५

निकट समस्याओं की उलझन,
सुलझाओ। यह कह भेजा।
उपकृति के प्रतिफल में मैंने,
तुम को भगिनी कह खोजा।

६

हाथ बढ़ा कर दूर क्षितिज में,
गिरती उल्का को पकड़ा।

आज कल

तूने यह आभूषण मानो,

मुख स्वप्नों में ला जकड़ा।

७

गहन सिन्धु के विस्तृत उर को,

पूर्ण इन्दु ने पनपाया।

उसी इन्दु की रुचिर परिधि को

मणि कंचन पर पहनाया।

८

स्नेह सौध के हृदय द्वार पर,

है चित्रित यह वन्दन वार।

या सुरपुर की मधुर सुधामय,

यह गङ्गा की निर्मल धार।

९

नील दृगों ने इन्द्र धनुष यह,

प्रिय का आयुध चन्द्र समान।

तृषित भाव के नीरव कवि को,

यह फूलों का पुष्प विमान।

१०

दूर दृगो मे परा व्योम की,
मिलती अधरो की रेखा।
भाग्य जगत् के गालो मे या,
हासित कुसुमो की परिखा।

११

जीवन-यात्रा के प्रान्तर मे,
लता पिहित यह शाद्वल स्थल।
या प्रभात तिमिरांचल मे यह,
अंकित अरुण प्रवाल विमल।

१२

स्नेह सदन के बीहड मग मे,
उषा प्रदीप की मधुप्रतिमा।
या स्फुट तारों की आँखों मे,
मृग जीवन धन की महिमा।

१३

या प्रभात कीर्ति के अवसर,
प्रच्युत रजनी का कुण्डल।

या दिनरात मिलन की होली मे,
जलता रवि मुख मण्डल ।

१४

क्षुब्ध जगत के प्रेम सिन्धु मे,
यह अवतीर्ण हुई तरणी ।
भ्रान्त लोक के चित्रशाल की,
या यह नव कल्पित धरणी ।

१५

चित्रकार के नेत्रपुटो की,
अपलक मौनमयी भाषा ।
सदा विकस्वर भगिनी तेरे,
सुख संचय की परिभाषा ।

१६

प्राची तट के शान्त जलधि पर,
इन मानव स्मृतियो का रूप ।
या प्रकाश से प्रेममार्ग के,
जगा दिया मेरा हृत्कूप ।

१७

सुना रही हो प्रिय भाई को,

इन गुम्फित कलियों का राग।

घुमा रही इस मंजुपरिधि पर,

मेरी आशा का अनुराग।

१८

असमय में ही वसुधा तल पर,

रच दिखलाया यह मधुमास।

बाल रमा की चंचलता का,

सुन पाया मैंने परिहास।

१९

पूत प्रथाओं की मुक्ताओं से,

गूँथी यह माला सविलास।

आर्य गगन के गौरव में यह,

साक्षर प्रणय भरा इतिहास।

कुड़कणी - गीत

रचयिता — '<u>आनन्द</u>' एकादश

यह गीत, इन्द्रप्रस्थ के प्रसिद्ध 'साधू बाड़े' में रहते हुए उन दिनों, जब कि परीक्षाओं की बड़ी जोर शोर से तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं 'पढ़ाई' को लक्ष्य करके लिखा गया था। मेघनाद वध के हिन्दी अनुवाद का जो छन्द है वही इस गीत का भी छन्द है। आप को यह जान कर आश्चर्य होगा कि, इस रचना में मेघनाद वध के उपक्रम में कवि ने जो आत्म निवेदन किया है उसकी कुछ पंक्तियाँ थोड़े से परिवर्तित रूप में तद्वत् आगयी हैं। लेखक इस को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकृत करता है। यद्यपि यह कार्य दूसरे के भावों का अपहरण करने के हेतु से नहीं; प्रत्युत हास्य के लिये लेखक विवश था इस लिये किया गया है; तथापि यदि किसी महानुभाव को यह आचरण अनुचित प्रतीत हो, तो उसके लिये रचयिता क्षमा याचना के साथ २ कवि की आत्मा से अनुनीति करता है कि, वह उसे प्रथम अभ्यास के नाते ऐसा करने दे। — लेखक।

नेत्र मध्य बसो निरुपम-
ज्योतिरूप धारके,
कण्ठ मध्य आके बसो-
आओ कछु गीत गा!

आकर हृदय मध्य
भाव बन आओ जो,
फिर कुछ चाह नहीं
देवि, इस दास की।

—— o ——

राजहंस

मैं क्या हूं

लेखक श्री इन्दु

तुम पूछ रहे हे मै क हू
मै एक उपेक्षित दुखिय हू॥

\+ + +

पीड ओ क गलहार लिए
क्षत ओं क उपहार लिए।
यह मेर जीवन स्वप्न बन
सुख दुख क है बस मेल बन ॥

\+ + +

जलती रहती मम अन्तस्तल
भग्नाश ही बन दावानल ।
मेरी आंखों से बहते जल
है धरते सरित रूप निष्फल ।।

\+ + +

परिवर्तन का यह नियम सखे
रहता मन मेरे प्रविचल ।
कब समझे पतझड़ का ?
खोई निधि और सरावल ।।

\+ + +

बस कुछ आर्द्रा में है प्यारे ।
नीरस जीवन में रस लेने ।
मैं बैठा हूँ स्वागत करने
उन घड़ियों का स्वादन करने ।।

\+ + +

तुम पूछ रहे हो मैं क्या हूँ
मैं एक उपेक्षित दुखिया हूँ ।।

\+ + +

कौन ?

अरे ! कौन वह स्वप्न लोक से
मुझे खींचता अपनी ओर ।
मेरा नन्हा मानस पक्षी
पाता जिसका ओर न छोर ॥

* * *

दूर पड़े उस सूने पथ पर
अरे ! कौन जाता है वह ।
कौन पवन वीणा के झीने
सुर पर ताल बजाता वह ॥

* * *

उर अन्तर में भी झुक देखूं
किसका अनहत नाद हुवा।
बाहर भीतर दूर पास सब
किस मधुध्वनि का वास हुवा॥

* * *

है वह कौन कहां का वासी
किस सौभाग्य वती का धन।
किसकी पूजा में तत्पर हैं
सकल विश्व का नीराजन॥

* * *

सावन में वे श्याम घटाएं
किसको पाद्य दिया करतीं।
किस प्रीतम की पुण्य याद में
सिसक सिसक आंसू झरतीं॥

* * *

श्री पं. आनन्द स्वरूप जी
विद्यालंकार

श्री सतीश

किस उपवन की शोभा कलिके!

किस ज्योति से द्योतित हो तुम,

किन धाराओं से हो सिंचित,

किन अमल यशों की धवल किरणें,

मुग्धे! तुम हो वंचित।

आशा है किस उर की माला,

माला बनकर महकाओगी,

किसकी कसक कसकती सुन कर,

सुधा सलिल को बरसाओगी।

स्मित अधरों पर विकसित लाली-

से, अमृत लेले कलिके;

मत दे देना अपने रस को,

लोभी मधुकर और अलि के।

किस उपवन की शोभा कलिके!

मानव जीवन की यही कहानी

दो दिन हँसना फिर रोना

अब खिलो! समय है फिर अन्त-

काल में शून्य कब्र में सोना

अपने दिल के अरमानों को

दिल में ही छिपाये जाना

जैसे आये थे वैसे ही चुप-

चाप किसी दिन चल देना

लेख लहरी

आज कल

यहीं से कविता का प्रारम्भ होता है। कवि की उन प्राणों की पुकार को उस व्याध ने सुना हो या न सुना हो पर यह तो वायु के एक झोंके के साथ किसी पुष्पदल पर फैल कर अमर होगई। अब तो जिस २ के कानमें यह पुकार गूंजेगी उसी के मुख से उस विरह व्यथा के लिए शत_शत शब्दों की आहें निकली होंगी। शेक्सपियर मुरझाये-हुए पत्ते तोड़ता को एक अधिर [illegible] जाता है। [illegible] पर मुसकराती भूल नहीं सकता। जब कभी यह दृश्य उसके सामने आयगा तभी यह विचार भावों के रूप में कविताओं में प्रकट हो जायगा।

कहा जा सकता है मनुष्य क्यों अपने विचारों को इधर उधर फेंकता फिरता है? क्यों न अपने मन में ही उन्हें रखा करे? आखिर जानवर पशु पक्षियों में भी तो हैं। उनमें आँखें मन होते हैं, पर वे तो किसी भाव अपना प्रकट नहीं करते। पर इसका उत्तर यह है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, बिना समाज के मानव जीवन की कल्पना हो ही नहीं सकती। यदि जब भी एक व्यक्ति को दुःख या [illegible] होता है तो वह अपने उस दुःख या खुशी को [illegible] चाहता है इसी को अपने हृदय [illegible] प्रकट करना चाहता है।

आज कल

कोई किसी को दुखी देखकर स्वयं दुखी न होता तो यह
मानव जीवन कितना असहनीय बन जाता, इसकी
कल्पना भी बड़ी भयावह है। इस प्रकार हमने
देखा है कि एक व्यक्ति अपने आपको दूसरे पर
प्रकट करना चाहता है, दूसरा उससे संवेदना करने
को तैयार है। एक कुछ देना चाहता है, दूसरा
उसीको लेने को तैयार है। यह विनिमय, यह आदान
प्रदान सृष्टि के आरम्भ से चल रहा है और तबतक चलता
जाएगा, जबतक प्रलय नहीं हो जायगी। अपने आपको
दूसरो पर प्रकट करदेने की भावना और अन्य के विचारों के
साथ संवेदना की भावना ये दोनो मिलकर एक दूसरे को [illegible]
कर रहे हैं। यह भावो का विनिमय ही साहित्य का
मूल है।

इस प्रकार यदि विस्तार को छोडकर अपने विषय
को समीप से कहे तो कह सकते है कि मानव हृदय
और मानव चरित्र साहित्य की उत्पत्ति के हेतु है। या
मानव चरित्र इतना भी जैसे आवश्यकता से अधिक
कह दिया है। वस्तुत मानव चरित्र और बाह्यप्रकृ-
ति ये दोनों मिलकर मनुष्य के हृदय में प्रतिक्षण जो
भाव चित्रित करते है। अन्तस्तल मे जिस संगीत को
प्रतिध्वनित करते हैं। वही चित्र और वही गान

साहित्य का मूल है। महाकवि भवभूति ने "वन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम्" कहकर यह बताने की चेष्टा की है कि वाणी आत्मा की कला है। जिस प्रकार एक फूल वृक्ष से रस लेकर अपने अपूर्व सौरभमय आल्हादपूर्ण जीवन में खिल उठता है, पर मूल में वह सिवाय वृक्ष के रस के और कुछ नहीं है, उसी प्रकार साहित्य भी आत्मा के रस को लेकर विकसित होता है। और मूल में आत्मा के रस के सिवाय और कुछ नहीं है। यह आत्म रस का विकास ही साहित्य का मूल है। जब व्यक्ति अपने वैयक्तिक अनुभव को विश्व-मानव का अनुभव बनाना चाहता है, क्षणिक को चिरस्थायी बनाना चाहता है, और भाव को भाषा की चीज़ बनाना चाहता है,

तभी इसकी भी सृष्टि होती है।

कविता

श्री सत्य भूषण जी
'उपस्नातक'

मानव जीवन की उन्नत अवस्थाओं में भी जब कि चारों ओर घोर अंधकार ही अन्धकार छाया होता है, एक आशा की झलक और कोमलता का अंकुर दृष्टिगोचर होता है। यह झलक और कोमलता कविता की ही है। इस विस्तृत संसार में कविता हीन व्यक्ति की कल्पना असम्भव नहीं तो असाधारण अवश्य है।

क्या पूछते हो कविता कहाँ है? देखिये शाली राजा महाराजाओं के गगनचुम्बी प्रासादों से लेकर गरीबों की टूटी फूटी झोंपड़ी तक, सहारा के रेगिस्तान से लेकर उत्तरी ध्रुव की बर्फीली चट्टानों तक इस सर्वव्यापी कविता का अखण्ड साम्राज्य है। कविता और जीवन कविता और प्रेम अथवा कविता या सौंदर्य आदि समस्त शब्द एकार्थ के सूक्ष्म द्वन्द्व है।

मनुष्य मात्र के जीवन में एक ऐसी दैवीय शक्ति का-

जन होता है जिसके मानवीय जीवनकी मानसिक संकुचितता व्यावहारिक कटुता निराशता आदि का सम्पूर्ण लय हो जाता है। इन सबके लिए वह प्रेम प्रोत्साहन और सौंदर्य के नवनवतके सुरसे विहार कर रहा होता है। इसके अतिरिक्त वह अपने जीवनमें अर्थ परम्परा या सामञ्जस्य का अनुभव करता है। इस सर्वांगीण अवस्थामें जब कवि वह अपनी आन्तरिक वीणाके तारोंको कराङ्गुलि से स्पर्श करता है तब मधुर स्वरमें कविताका प्रादुर्भाव होता है। कविता ही इस उलझे हुए संसारकी मार्मिक गाथाओंको गाती और प्रेमकी गुत्थीको सुलझाती है और संसारमें वैविध्य में ऐक्य स्थापित करती है।

आशाके आगमनसे जैसे मनुष्यजीवन सुखद और उज्ज्वल होता है वैसे ही कल्पनाके आगमनसे भी मनुष्य सुरसे रोमाञ्चित रहता और संकुचित बन जाता है। मनुष्य जितने क्षणमें घूमता है उतने हीको यदि अपना सर्वस्व समझे और कल्पनाको अपने राज्यमें स्थान न लेने दे तो इस अवस्थामें वह निश्चय ही केवल दुस्साहस ही करेगा। जो व्यक्ति कल्पना नहीं क

आज कल

सभी कविता उसके ओर से दूर भागती है। दूसरों के दृष्टि
बिन्दु को सहानुभूति के साथ देखने की शक्ति हमें कविता से
उपलब्ध होती है। इस प्रकार कविता हमारे जीवन को अधिकाधिक
अधिक विशाल सुन्दर और तेज बनाती है। यह सम्भव है कि
मनुष्य कविता की प्राचीन सम्पत्ता हुआ केवल व्यवहार की
बुनियाद पर जीवन भवन का निर्माण करे। परन्तु उस स्थिति में
जब कि मनुष्य व्यवहार की एक ही चाबी से सब ताले खोल रहा
होगा और केवल fact पसन्द करेगा, वह समय दूर नहीं जब
संसार के जीवन में प्रलय की भेरी बजने लगेगी। Tragedy is
the destruction of fancy by fact रस्किन के इन वाक्यों में
कितना तथ्य निहित है।

बहुत से लोग केवल शब्दों की तुकबन्दी को
जो कि किसी खास नियम में गढ़े गए हों, कविता समझते
हैं। परन्तु यह बात केवल उनकी समझ की ही सीमित है। मनुष्य
जब कभी निरे शुष्क व्यवहारों से थोड़ी देर के लिए बरी होता है
तब वह कल्पना कहो या कविता कहो के संसार में विचर
कर रहा होता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य में कल्पना का वास

ज्ञान का घन है, और चैतन्य है। जीवन सर्वतोमुखी और बलका आविर्भाव क्रान्तिता से होना चाहिए। यही एक विकासक्रम है।

* * *

गद्य-गीत

माँ

अनुवादक -
श्री 'रवीन्द्र'

माँ तू सदा यहाँ अकेले मे चुपचाप उदास मुख बनाए क्यो बैठी रहती है।

मैया खिडकी मे से बौछार आ रही है - और तेरे कपडे गीले हो चुके है पर तुझे - पता तक नही क्यॉ चार का घण्टा तूने नही सुना दद्दा के घर लौटने का समय भी हो गया।

अम्मी तुम्हे हो क्या गया है। तुम ऐसी क्यो हो गई हो। क्या आज भी बापू की चिट्ठी नही आई। डाकिया गॉव के हर एक आदमी के लिए चिट्ठी लाता है, पर बापू की चिट्ठियाँ अपने पढ़ने के लिये रख लेता है।

अम्मा डाकिया [illegible] शैतान है।

माँ उदास न हो कल उस गाँव में बाजार लगेगा कुछ कागज और कलम मँगालेना;

मै अपने आप बापू की चिट्ठियाँ लिखा करूंगा उनमे कोई भूल न होगी

मैं अ से लेकर म तक सब कुछ लिख दूंगा

अच्छी अम्मी तू मुस्कराती क्यों है ?

क्या तू समझती है कि मैं बापू की तरह नहीं लिख सकता ?

लेकिन मैं लिखने से पहिले लकीरे खींच लूंगा और बड़े बड़े सुन्दर अक्षर लिखूंगा, लिख चुकने के बाद मैं बापू की तरह अपनी चिट्ठी उस डाकिये के थैले में डालने की मूर्खता न करूंगा।

मैं तो अपने आप ही उसे लेकर तेरे पास आऊंगा और तुझे पढ़ने में भी सहायता दूंगा

अम्मी जानता हूं उस डाकिये को, यह तो हमे अच्छी अच्छी चिट्ठियाँ देना ही नहीं चाहता। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उलझी सुलझी

लेखक श्री ब्र. अनन्तानन्दजी

मैं किस उलझन में उलझ गया ?

सुबह-शाम, दिन रात, चौबीसों घण्टे वही उलझन ।

एक नई समस्या एक नया हल ; उसके बाद एक और नई समस्या और फिर वही उलझन ।

लाख सुलझाता हूँ, लाख प्रयत्न करता हूँ कि कोई नई समस्या सामने न आवे । पर नहीं, फिर वही एक नई समस्या, एक नया हल, फिर एक नई समस्या और फिर वही उलझन - सुख देने वाली उलझनें । इच्छा थी इस उलझन में पड़ूँ तो नहीं । पर, जबरदस्ती मुझे इसमें लाकर डाल ही दिया गया । फिर भी इच्छा थी इससे अलग ही रहूँ- इससे बचूँ, पर बचने के प्रयत्न में और फंसता गया । आज तो इन उलझनों का फन्दा नाग पाश की तरह मेरे गले में पड़ा है।

मै इसे नही सुलझा सकता-नही दूर कर सकता। दम घुट रहा है।

अब नही रहा जाता ।

उलझनो दूर हट जाओ। नही तो मै तुम्हे तुम्हारे फन्दो को छिन्न भिन्न
कर डालूगा। अब और कोई उपाय नही
है। फिर नही हटती - नही दूर होगी। अच्छा अच्छा, न हटो। मुझे
तुम्हारी परवाह नही।

तुम्हारी जितनी परवाह की जाए उतनी ही तुम ज्यादा काटने को दौड़ती
हो।

अच्छा फिर- । नही नही मै कुछ नही सोचूगा। हा तो फिर
दूर हटो परे रहो मै अब कुछ नही सोचना चाहता - मै अब शान्ति
से बैठना चाहता हूं।

हा अब ठीक है। सब साफ होगया। उलझनो का फन्दा धूए की
एक क्षीण रेखा की तरह न जाने कहां अन्तर्हित होगया। हृदय पर से
बोझ उतर गया। हा अब मै ठीक तरह से सास ले रहा हूं।

कुछ नहीं

लेखक श्री पं. वागीश्वरजी विद्यालङ्कार

मुझे यहाँ खड़े देखकर आप सोचते होंगे कि मैं कुछ कहूँगा। पर आप सच जानिए मेरे पास कहने को कुछ नहीं है। आप पूछेंगे 'जेब में' हाथ क्यों डालते हो? मैं कहूँगा कि जेब खाली हो तो भी उसमें हाथ डाले ही जाते हैं। एक अपटुडेट जेन्टलमेन पतलून की जेब में हाथ डाले चले जा रहे थे। रास्ते में एक मित्र मिल गए उन्होंने कहा— यार, आज तो सिनेमा दिखा दो। सुना है बहुत बढ़िया फिल्म आई हुई है। बाबूजी बोले— आज तो जेब खाली है। पास खड़े मनचले ने कहा जेब खाली होना कौन बड़ी बात है? मालूम होता है कपड़े भी [illegible] से उधार लिए—

हैं। इसलिए मेरी जेब में कुछ नहीं। पर यह कागज
तो निकल आया। यह बाजी तो गई। अच्छा
तो यह सही। इस कागज में कुछ नहीं। इसी
बात को आपके कोई मित्र यों भी कह
सकते हैं कि सुबह का समय है मैं इस
समय झूठ नहीं बोलता। मानो दोपहर का
समय होता तो वे झूठ बोल लेते। यदि
यही बात उन्हें किसी और समय कहनी
होती तो भी वे उतनी आसानी से कह
सकते थे कि देखिए शाम का समय है
सूर्य नारायण छिप रहे हैं। यह तारों
की रात है। मतलब यह कि समयानुसार
[illegible] मुहावरा बदलता जाता पर बात
वही। [illegible] बोलने को

कहते और बोलते हुए थी। 'अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति'। जिसका हाथ पकड़ लिया उसे पार तक पहुँचाना यही तो मनुष्यता है। शारणागत के गुण-दोष का विचार नहीं किया जाता। आपके कुछ मित्र दुकानदारी के साथ २ धर्म प्रचारक का काम भी करते हैं। वे अपनी दुकान पर लिखकर टाँग लेते हैं "एक बात"। इस शिक्षा का लाभ उन्हें न हो तो ग्राहकों को ही सही। स्वार्थ से परमार्थ सदा अच्छा होता है। एक अन्धा इसलिए लैम्प लेकर चला करता था कि आँखों वाले तो अन्धे न बनें। हम लोगों के अंग्रेजी शिक्षा से भी [illegible] उपकार [illegible]

जानते ही हैं कि युरोप सभ्य देश है। और कुछ हो या न हो वहाँ कम से कम व्यापारिक ईमानदारी का तो दृढ़ता से पालन किया जाता है। दुनिया के तख़्ते पर आप कहीं चले जाएं एक ट्रेडमार्क के नीचे आपको एक ही स्टैण्डर्ड की चीज़ आँख मूंद कर मिल जाएगी। तभी तो इंडियन मेडिकल कमिशन की रिपोर्ट में छपा था कि ईमानदारी के इन ठेकेदारों ने हज़ारों मन चाक कुनीन के नाम से हमारे यहाँ बेच दी। मालूम होता है इन्हें ideas rule the world इस सिद्धान्त पर अटल विश्वास है। [illegible]

झा दो कि उसे दवा ही दी गई है। फिर इन
बेचारों ने तो डाक्टरों को भी यही समझा
दिया था। हमारे फकीरों की चुटकी का भी
तो यही रहस्य है। और हम देखते हैं कि
निन्यानवे प्रतिशतक रोगियों को प्रायः लाभ
ही होता है। यह संभव है कि आपको मि-
लने वालों में शेष एक प्रतिशतक ही
अधिक हों। यह आपकी बदकिस्मती है।
हाँ! तो मैं कह रहा था कि इन्होंने अं-
ग्रेजी शिक्षा से भी लाभ उठाया है।
[illegible] में लाभ उठाना ही चाहिए।
[illegible] और उठायेगा
कौंसिलों में [illegible] लोगों को
[illegible] जाएँगे।

एक अच्छे खासे प्रतिष्ठित सज्जन की मृत्यु हो गई। जगह २ शोक सभाएँ हुई। उनके परिवार के प्रति सहानुभूति के प्रस्ताव पास हुए। यद्यपि उनका निकट परिवार कोई न था। कुछ दिनों बाद एक सज्जनने प्रायः सभी समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाया कि सहानुभूति सूचक प्रत्येक पत्र का पृथक् २ उत्तर देना अत्यन्त कठिन है अतः वे समाचार पत्रों द्वारा सब के प्रति एक साथ ही कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं। इस उपाय से उनको अनेक नाम समाचार पत्रों में अनुचित लेखको का सौभाग्य प्राप्त हुआ और साथ ही लोगों को यह भी मालूम हो गया कि

अमुक महाशय उस प्रतिष्ठित सज्जन के निक-
टतम पाई तक सम्बन्धी हैं। राजा की मृत्यु
से बड़े लड़के को लाभ होता है। महापुरुषों
की मृत्यु से समाचार पत्रों के हाकर्स को
लाभ होता है। भूख हड़ताली की मृत्यु से
~~बेकार युवकों को लाभ होता है।~~ आन्दोलन
को लाभ होता है। पत्नी की मृत्यु से बेकार
युवकों को लाभ होता है। अध्यापक की
मृत्यु से विद्यार्थियों को लाभ होता है।
बिल्ली की मृत्यु से चूहों को लाभ होता
है। लायक की मृत्यु से नालायक को लाभ
होता है। लोगों की जमा पूँजी के मरने से
दिवालियों को लाभ होता है। गधे
की मृत्यु से कुत्तों को लाभ होता है। पज-

मान की मृत्यु से ब्राह्मण को लाभ होता है। तालि-
लिका बहुत लम्बी है। किन्तु मुझे खेद है कि
विषयान्तर हो गया। मैं आपको बतला
रहा था कि इन लोगों ने अंग्रेजी शिक्षा
से भी लाभ उठाया है। यह आव-
श्यक नहीं कि वे स्वयं अंग्रेजी जानते
हों। बात यह है कि इन लोगों ने अपना
मोटो "Honesty is the best policy"
सुन्दर फ्रेम में जड़कर दुकान में लटका
लिया है। स्कूल टीचर को इससे यह
लाभ होता है कि उसे [illegible] में निबन्ध
लिखवाने के लिए [illegible] विषय [illegible]
जाता है। पैरे कि उससे कहीं अधिक [illegible]
साफ करते हैं। [illegible]

* *

हुई। बन्द गले की कोट पहनने वाले खुर्रीट इनके फन्दे में नहीं फंसते तो क्या? टैनिस कालर ~~कमीज~~ की कमीज वाले निश्चिन्त विद्यार्थियों पर इनका जादू खूब चलता है। ये अपनी नीति में सत्य की घोषणा कर व्यवहार में उसे कुछ नहीं समझते। इनकी वंश परम्परा अति प्राचीन है। बहुत खोज करने पर पता चला है कि इनका सम्बन्ध उन ऋषियों से है जिन्होंने यज्ञ में पशु के गले पर छुरी फेरते समय "स्वधीते मैनं हिंसीः" अर्थात् "हे शस्त्र इसको मत मारना" इस मंत्र के पढ़ने की व्यवस्था की थी, सत्य सर्वत्र एकसा रहता है तभी तो कुर्बानी करते समय भी परमात्मा दयालु है यही कहा जाता है। आप कहेंगे कि मेरे आज के विषय से इन बातों का सम्बन्ध कुछ नहीं। मेरा उत्तर है कि तभी तो मैं यह सब कुछ कह रहा हूँ। क्योंकि मेरा विषय कुछ नहीं ही तो है। किसानों की परिभाषा में बीस बीस विस्वे, सुनारों की बोली में बावन तोला पाव रत्ती, सर्वसाधारण के मुहावरे से सोलह आने, गणित वालों के हिसाब से सौ प्रतिशतक तथा प्रायः जो बात जैसी नहीं उसे वैसा कहने के अभ्यासियों की भाषा में यदि कहा जाय तो मैं आपके सिर की कसम खाकर कहता हूँ कि आप मेरे [illegible] दिल और दे- [illegible] आप के [illegible] हैं क्या, आप [illegible] [illegible] कि मैं कुछ नहीं कहूंगा। [illegible] [illegible] न हो जाएँ। क्यों कि दिल [illegible]

पर भी आपको कुछ न ~~दिखेगा~~ दीखेगा। दूसरी ओर यह भी
भय होगा कि कहीं बड़े घर की हवा न खानी पड़े। आप
पूछेंगे कि फिर ये लोग बात २ में दिल चिरवाने की बात
ऐसे ~~हलकेपन~~ हलकेपन के साथ क्यों कह दिया करते हैं।
मानों उनका दिल कोई गोभी का फूल या शिमले की
मिर्च है। बात यह है कि इस वाक्य का अर्थ ही कुछ
नहीं। बहुत से शब्द, बहुत से मुहावरे, बहुत से वाक्य निरा-
कार निरर्थक ही होते हैं। कहने वाला कहता है। सुनने
वाला सुनता है। समाज का तकाजा है कि उन शब्दों को
कहना ही चाहिए, किन्तु सभी की दृष्टि में उनका
अर्थ कुछ नहीं। मैंने आपकी चीज आपको दी। आपने
कहा - धन्यवाद। मैंने कहा - आपकी कृपा है इसकी
क्या आवश्यकता थी? बतलाइए इसका क्या अर्थ है।
मेरे मुख से कोई बात ऐसी निकल गई जो आपको अच्छी
न लगी। आपने कहा अपने शब्द वापिस लीजिए। मैं
अड़ा। जनता ने कहा आपको शब्द वापिस लेने पड़ेंगे।
मैंने देखा मामला बेढब है। कहा - मुझे खेद है यदि
मेरे शब्दों से आपको तकलीफ पहुँची हो तो मैं उन्हें
वापिस लेता हूँ। मेरा मतलब यह नहीं था। [illegible]
मैं [illegible] और [illegible]
न किसी को खेद हुआ न होगा। शब्द [illegible]

तो-कुछ नहीं। विद्यार्थी क्लासरूम में एक पुस्तक में दूसरी पुस्तक छिपा कर पढ़ रहा है। अध्यापक पूछता है - रमेश। क्या है? उत्तर फ़ौरन मिलता है- कुछ नहीं- पढ़ रहा हूँ। अर्थात् आप सिर मारे जाइए। मैं आपका पाठ कुछ नहीं पढ़ रहा हूँ। अपने साथियों पर दृष्टि डालिए। कई बहुत अच्छे हैं। क्रोध में आकर भला बुरा सब कह डालते हैं। पर अगले ही क्षण दिल में कुछ नहीं रहता। कोई मोटे तो बहुत हैं पर शायद बल कुछ नहीं। जरा हेडमास्टर साहब के यहाँ चलिए। सुनिए क्या कह रहे हैं। तुमने कसूर तो बहुत बड़ा किया है पर इस बार मैं कुछ नहीं कहता। डाक्टर साहब कह रहे हैं- रोग तो आपका बहुत बढ़ गया है पर आप मेरे पास आ गए हैं। बस, अब डर कुछ नहीं। पत्नी कह रही है- आपकी [illegible] रही है और देर कुछ नहीं। [illegible] गये। [illegible] फूट गए। [illegible] आकर पूछा- क्या मामला है? [illegible] मिला- अजी कुछ नहीं। [illegible] दो पैसे की [illegible]

तांगे वाले लड़ पड़े थे। झगड़ा हिन्दू मुसलिम दंगे का रूप धारण करने लगा था पर बीच बचाव हो गया। अब कुछ नहीं। मैंने बहुत गिड़गिड़ाते हुए कहा— अजी, दरोगा जी मैं गरीब आदमी हूँ, उजड़ जाऊँगा, मैं कुछ नहीं दे सकता। इस बार माफ़ करो। ये पाँच रुपये आपके पान सुपारी के लिए हैं। सिपाहीने बड़ी उपेक्षा दिखाते हुए कहा— अरे, जानता नहीं हम रिश्वत लेना सूअर खाने के बराबर समझते हैं। अब कुछ नहीं हो सकता। तेरा चालान जरूर होगा। आप बड़े परिश्रम से रातों बैठकर कौंसिल के लिए प्रश्न बनाइये। सरकारी मैम्बर जवाब देंगे। इस प्रश्न का उत्तर माननीय सदस्य को मैं अभी कुछ नहीं दे सकता। राजनीतिज्ञता तो है ही यह कि आप घण्टों बोलें पर उसमें कहें कुछ भी नहीं। जो वक्ता बड़े [illegible] बोलते हैं जब आपके पास कहने को कुछ [illegible] है। वह सफल वक्ता नहीं है जो बोलने को कुछ न होते हुए बोले। वायसराय प्रतिवर्ष असेम्बली में भारत के सम्बन्ध में अपना [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निचोड़ होता है कुछ नहीं। [illegible] [illegible] [illegible] है तो इसमें कुछ नहीं [illegible]

...... स्थान है। उसकी ठोडी के तिल के सामने शरद् पूर्णिमा का चन्द्रमा कुछ नहीं। हा-हा-हा-हा अजी, कुछ नहीं। वह टिकट चैकर थोड़े ही है। पाजी डूबे हमें छकाने के लिए बहुरूपिया बनकर आया। हमारी सधी आँखें उसे ताड न सकी आज तो खूब नकू बने। हा-आज उसके बिना अब यह जिन्दगी कुछ नहीं। अरे। तू मुझे कुछ नहीं समझता? एक झांपड दूंगा तो बत्तीसी बाहर आ पडेगी। अरे, इन्द्र और वरुण की तो बात ही क्या, स्वयं शिव और विष्णु भी मेरे आगे कुछ नहीं। ओः, कैसा सर्वनाश! वह तो इधर ही बढ़ा चला आ रहा है। अब मेरी रक्षा का उपाय कुछ नहीं। अरे, अंग अंग गल गया, पीप बह रहा है, कीड़े चल रहे हैं। दुर्गन्ध के मारे नाक फटी जाती है, ऐसे सुन्दर शरीर की यह दुर्दशा! कुछ नहीं देख लिया। यह संसार कुछ नहीं। जिधर देखता हूँ उधर कुछ नहीं। आप कहेंगे,— आप हैं, मैं हूँ, ये हैं, पर मैं कहूँगा आप कुछ। मैं कुछ। आप मैं नहीं

अर्थात् आप कुछ नहीं। मैं आप नहीं- अर्थात् मैं कुछ नहीं। इसी को दर्शनिकारों ने अन्योन्याभाव से कहा है। प्रत्येक पदार्थ का आदि और अन्त भी कुछ नहीं इन्हें प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव कहते हैं। विचारकों को इस कुछ नहीं से बड़ा प्रेम रहा है। कोई कहता है- कि कुछ से=सत् से कुछ नहीं अर्थात् असत् की उत्पत्ति होती है। विद्यमान मिट्टी से अविद्यमान घड़े की उत्पत्ति होती है। कोई कहता है- कुछ नहीं से अर्थात् असत् से कुछ की अर्थात् सत् की उत्पत्ति होती है। बीज नष्ट होकर = बीजत्व को खोकर = कुछ नहीं होकर वृक्ष को उत्पन्न करता है। तीसरे का कहना है कि कुछ नहीं से कुछ नहीं उत्पन्न होता है। अर्थात् सब शून्य है सब मिथ्या है। यही सबसे बड़ा तत्व ज्ञान है - वैराग्य है - निर्वाण है मोक्ष है। न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न कोई पैदा होता है न मरता है न [illegible] मुक्त होता है। गति क्या है? [illegible] के लिए आगे बढ़ाते हैं [illegible] होता है [illegible]

क्षणिक स्थिति परम्परा ही गति है। संसार में स्थिर कुछ नहीं। सब चल रहा है किन्तु कहीं २ गति हमें प्रतीत नहीं होती अर्थात् सूक्ष्म या विलम्बित गति की स्थिति है। अथवा यूँ कहिए कि गति के अभाव का नाम स्थिति है। अभाव कुछ ही नहीं इसलिए स्थिति भी कुछ नहीं। इस पूर्वापर विरुद्ध भाषण का अभिप्राय क्या है, कुछ नहीं। जादू का खेल आपने देखा है। जादूगर आपकी नाक को छूकर पूछता है – यहाँ आपने क्या छिपा रखा है। आप कहते हैं कुछ नहीं। वह फौरन वहाँ से रुपया निकाल देता है। यही तो कुछ नहीं से कुछ की उत्पत्ति है। वेद में भी तो कहा है उस समय न सत था न असत् था। अर्थात् परमात्मा ने कुछ तथा कुछ नहीं दोनों से भिन्न संसार को बना दिया। तभी तो वह मायावी है। अस्तु

अत्यन्त प्राचीन काल से लोग इस कुछ नहीं को जानने का यत्न करते हैं। उपनिषदों के ऋषियों ने भी कहा था कि "यस्तद्वेद" में तद्विदो [illegible] वेद च? अविज्ञातं विजानतां [illegible] ऐसी बातें भी [illegible]

इतना जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता। मैं आपसे यह पूछने की ढिठाई न करूँगा कि आप भी कुछ नहीं को जानते हैं या नहीं। अस्तु

एक आदमी ने गलती से किसी को कह दिया कि यह काम कर दो मैं तुम्हें कुछ दूँगा। काम करके वह आदमी कहने लगा "मुझे कुछ दो"। देने वाले ने उसे रुपया दिया। लेने वालेन कहा "यह तो रुपया है कुछ नहीं। देने वाला बड़े चक्कर में पड़ा। किसी सयाने ने उसे उपाय बतलाया। उसने एक गिलास में पानी भरकर उसमें मरा झींगर रख दिया। फिर उस लेने वाले से कहा भाई मुझे पानी पिला दो। लेने वाले ने गिलास उठाते ही कहा- "बाबू जी, इसमें तो कुछ पड़ा है। बाबूजी ने कहा- बस ले ले। यही तो कुछ मिल गया।" लेने वाला अपना सा मुँह लिए चला गया।

एक ग्राहक ने दूकान पर जाकर पूछा- "लाला जी, कुछ है भी?" लालाजी ने कहा- "आइए, सब कुछ है।" ग्राहक ने हल्दी माँगी। लालाजी ने कहा- "अजी हल्दी तो अभी खतम हुई है।" जीरा माँगा गया। उत्तर मिला "जीरा तो अभी आ ही रहा है। आदमी लेने गयो है।" सौंफ [illegible] लालाजी बोले- [illegible]

बाबूजी, आप तो देखकर जो २ नहीं है क्यों मांग रहे हैं।" ग्राहक ने कहा— "सच तो यह है कि आपकी दुकान पर कुछ है ही नहीं।

राजकन्या के विवाह की धूम थी। तरह तरह के माल तय्यार हो रहे थे। पंक्ति पर पंक्ति बैठकर तृप्त हो उठती जा रही थी। एक भूखे के मुंह में पानी भर आया। वह भी सामने ही दूर बैठ गया। उसने देखा परोसने वाले पूछते हैं— "आप को कुछ चाहिए?" खाने वाले कहते हैं "कुछ नहीं" परोसने वाले जबरदस्ती देकर चले जाते हैं। जब सब खाकर उठ गए तो उसे खाने को कहा। भिखारी बोला— "मुझे कुछ नहीं चाहिए"। कर्मचारी को आश्चर्य हुआ। उसने मन्त्री से कहा। मन्त्री ने भी आग्रह किया। कि बाबा कुछ खालो। उसे ऐसे मंगल के अवसर पर किसी को खाली जाने देना उचित प्रतीत न हुआ। पर बाबा जी का वही उत्तर था "कुछ नहीं" राजा भी आया। उसने प्रेम से उत्तम भोजन सोने चांदी के पात्रों में सजाकर मंगवाए। पर बाबाजी टस से मस न हुए। राजा ने आशर्फियाँ, मोती और हीरा जवाहरात के थाल भर दिए। पर बाबा जी ने फिर भी यही कहा "मुझे कुछ

नहीं चाहिए" कहिए आप 'कुछ' पसंद करेंगे या "कुछ नहीं"? थोडी देर में मैं यहाँ न रहूँगा, आप न रहेंगे, कोई न रहेगा, यह संसार भी न रहेगा। बनने से पहिले यह था भी नहीं। आदि और अन्त में जो नहीं वह वर्तमान में भी नहीं। आप को सन्देह हो तो अभी आँख मींच कर देख लीजिए। आँख मीचना और देखना इसका मतलब ही कुछ नहीं।

आप को विश्वास न होगा। पर मैं जब कुछ कहने के लिए कमर कसकर खडा हो ही गया हूँ तो अब बाज़ न आऊँगा। मन्त्री जी के आग्रह पर जब मुझे लिखने को कुछ न सूझा तो अचानक इस कुछ नहीं पर ही मेरी दृष्टि पड गई। मैंने जहाँ तहाँ से 'कुछ नहीं' बटोरने शुरू किए। मेरे दौर्भाग्य से ढूँढते २ हेनरी फील्डिंग का लिखा हुआ एक निबन्ध भी आ टकरा। मैंने शीर्षक देखते ही लिखने का विचार छोड दिया पर कोई और विषय भी न सूझ रहा था। अन्तमें यह निश्चय किया कि पहिले अपना निबन्ध लिखके कर उसे पीछे पढ़ना जिससे विचारों का अपहरण न हो जाए। यही किया गया। पर अरचरांण

. . . .
बे सिर पैर का गड़बड़ घोटाला लिख चुकने के बाद मैंने उस सुन्दर निबन्ध को पढ़ा। तो मेरा लेख उसके आगे कुछ नहीं जँचा। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। कि मैं उत्तीर्ण हूँ। क्यों कि कुछ नहीं पर लिखा हुआ मेरा लेख वास्तव में कुछ नहीं। उनका निबन्ध तो सब कुछ हो कहिए कैसी रही। मेरा लेख कविता नहीं कथा-कहानी नहीं, नाटक नहीं। मैं समझता हूँ कि आप सब की सर्वसम्मति होगी कि यह सचमुच ही कुछ नहीं।

हिंदी का कहानी साहित्य

ले० विनयकुमार जी १३ श

It is of no use to cultivate a worthy manner unless worthy matter (Wise Saying).

वस्तुतः ही किसी देश का साहित्य उसकी जान है। साहित्य के द्वारा कोई देश राष्ट्र व जाति उन्नति की चरम सीमा तक पहुंच सकती है और इसी के द्वारा अवनति के गहरे गर्त में पतित हो सकती है। उसी महान आदर्शमय साहित्य के महत्वपूर्ण अंग 'कहानी साहित्य' पर प्रकाश डालने को आज हम उद्यत हुए हैं।

इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ के राज सिंहासन पर आरूढ होते होते योरोप विद्या के क्षेत्र में काफी उन्नत हो चुका था। देश में सुख और शान्ति का साम्राज्य होने से विज्ञान और साहित्य की खूब उन्नति हुई। कुछ उन्नत प्रदेशों में यात्राएं तथा व्यापार करने से लोग स्वदेश तथा विदेश के इतिहास-सभ्यता तथा संस्कृति-साहित्य और शासन व्यवस्था का भी अध्ययन करने लगे। इसी १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा १६ वीं के पूर्वार्द्ध में इंगलैंड में सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार शेक्सपियर, आधुनिक विज्ञान का जन्मदाता फ्रांसिस बेकन,

एडमण्ड स्पेन्सर, धार्मिक नियमों के प्रसिद्ध लेखक रिचर्ड हुकर तथा सरवाल्टर रेले सदृश प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वानों का आविर्भाव हुआ लेकिन इससे पूर्व - सर्वप्रथम 'सर-हम्फ्री स्पेन्सर' ने Fairy Tales नामक पुस्तक इंग्लैंड में बाइबल की कहानियों के आधार पर लिखी। तत्पश्चात् हाथर्न नामक अमेरिकन लेखक ने (Wonder Book) और Tangle wood tales नामक आश्चर्य जनक कथानक प्रस्तुत किये। स्विफ्ट की 'गुलिवर ट्रैवल्स' भी अब साहित्यिक क्षेत्र में अवतीर्ण होती है। कालान्तर में फिल्डर डिकन्स तथा सर-वाल्टर स्काट के उपन्यासों के कुछ स्थलों के आधार पर छोटी सी कहानियों की रचना हुई। किपलिंग और स्टीवन्सन ने भी अपनी बुद्धि कल्पना-शक्ति का कौशल दिखाया। योरोपीय कहानी साहित्य अब वर्तमान में प्रविष्ट होता है। और इसके 'एच-जी-वेल्स' की वैज्ञानिक सम्पदा युक्त कथाओं का विकास होता है और इसी समय रुसिया में तुर्गनेव की मौलिक कहानियां प्रकट हुई।

तो हम कालान्तर में व्यापार प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों ने अपने अपने देश की व्यापारिक कम्पनियों को धार्मिक सुधार आन्दोलन के बाद सुदूरवर्ती साम्राज्य प्रदेशों में व्यापार द्वारा देश की सुख समृद्धि बढ़ाने के लिये प्रोत्साहन दिया। भारत में भी यह राजनैतिक उथल-पुथल का जमाना था। व्यापार के द्वारा व्यापारियों पर शा-सन चला। शासन होने लगी और बंगाल मद्रास आदि अनेक प्रदेशों में

उन्होंने अपना राज्य सम्पादित किया। अपने दफ्तर आदि में काम
चलाने के लिये अब उन्हें एक शिक्षित समुदाय की आवश्यकता अनु-
भव हुई तब कलकत्ता मद्रास आदि में अनेक विश्वविद्यालयों
की स्थापना हुई। शिक्षा-प्रचार के साथ भारतीयों तथा योरोपीय
लोगों का सम्पर्क बढ़ता गया। हिन्दुस्तानियों ने अपने देश के साहित्य
के साथ साथ विदेशीय साहित्य का भी अध्ययन किया। ज्ञात होता
जाता है कि शिक्षा मनुष्य मात्र को उदार बनाती है और। ईश्वर
हिन्दुओं को सब अधिक गुणग्राहक आदि अनेक गुण सम्प-
न्नता के रूप में ये लोग न पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन करके
उसी के अनुकरण पर निबन्ध नाटक और उपन्यास रचना प्रारम्भ
की। उसी समय के लगभग [illegible] कहानी लिखना आरम्भ
आदि नाटककारों की छोटी छोटी कहानियां भारतीय साहित्य
को आकर्षक व रोचक बनाती हैं। पाश्चात्य कथा साहित्य
~~का विशेष अध्ययन~~ करके उसी के ~~अनुकरण~~ व आधार पर लिखी जाने
से ये तद्रूप ही हुई हैं। अतएव इधर संस्कृत साहित्य के हितोपदेश,
राजतरंगिणी आदि की छाप नहीं पड़ी। तदनन्तर लण्डन रहस्य आदि
के आधार पर ~~लिखी जाने वाली [illegible] हुई थी~~ अनेक तात्कालीन छोटे
और बड़े जासूसी आख्यानों के अनुवाद हुए। तदनन्तर उसी शैली पर अनेक
रचनाएं 'कार्तिक [illegible] जासूस' आदि के रूप में निकलीं जो
इस क्षेत्र में काफी नाम कमा चुके हैं। उधर (बंगालियों और मद्रासियों से

मेल होते होते इस युग ने साहित्य को भारतवर्ष में फैलाया। हिन्दी साहित्य में आते आते इसने इसी साहित्यकार मैं कलमगोरी की प्रकृति का अनुसरण किया। इस युग के संस्थापक तथा प्रबल प्रवर्तक-सर्वोत्कृष्ट कहानी लेखक श्रीयुत मुन्शी प्रेमचन्द थे।

वर्तमान संसार में जन साधारण छोटे कथानकों या आख्यायि-काओं को ही गल्प यह नाम देने लगा है। पर यह बात यथार्थ नहीं है। मनुष्य में अभिव्यक्ति की शक्ति बहुत प्रबलरूप में है। उसी से साहित्य का विकास हुआ है। गल्प भी वर्तमान काल में साहित्य का ही एक आधार बन गई है। ~~लेकिन~~ उसकी प्रवृत्ति के कारण जो कि किसी भी काम में ज्यादा समय नहीं लगा सकते और या वे लोग जिन्हें अपने आवश्यक दैनिक कार्यों से अवकाश उपलब्ध नहीं होता। अथवा — बड़े बड़े उपन्यासों नाटकों से उकता जाने वाले मनुष्यों के मनोविनोद के लिये ही इस कहानी कला का प्रादुर्भाव हुआ है। अब इसका उद्देश्य भी नाटकों उपन्यासों की भांति लोक रंजन तथा नैतिक शिक्षण ही है। इन लघु आख्यानों के नायक प्रतिनायक तथा अन्य पात्रों के साथ पाठकों का स्वल्पकालीन परिचय होने से इनका प्रभाव भी अल्पकालीन और कम महत्व वाला है। किन्तु यह ठीक है कि जैसे उपन्यास और नाटक का गद्यसाहित्य में एक उच्च तथा विशेष स्थान है वैसे ही आख्यायिकाओं का भी गद्य-कविता में एक उच्च तथा विशेष स्थान है। साहित्य में इनकी एक महत्वपूर्ण स्थिति है। यह स्वीकार करने में किसी का मतभेद नहीं।

भी खींच सकता है। वह कवियिता की बातों को अपनी कहानी में खींच लाता है और तब वह कहानी एक उत्तम कविता से किसी भी प्रकार हीन नहीं नजर आती।

वैसे तो कहानियों के बहुत से भेद हैं। पर इस छोटे से लेख में उनका सविस्तार विवेचन करना नितान्त असम्भव जान हम कुछ भेदों का ही दिग्दर्शन कराना चाहते हैं। कुछ कहानियों में तो सामाजिक कुरीतियों को प्रदर्शित करके उन्हें दूर करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता है। कुछ में ऐतिहासिक तत्वों पर प्रकाश डाला गया होता है। कुछ कहानियां आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को दृष्टिबिन्दु में रख कर लिखी गई होती हैं और कुछ तो नितान्त रहस्यात्मकता की ही द्योतक होती हैं। कई कहानियां केवल घटना प्रधान, कई भाव-प्रधान और कइयों में सिर्फ जीवन के किसी अंग विशेष पर ही विचार किया गया होता है।

आख्यायिका – कहानी के विषय को अपने ही परिमित क्षेत्र में विकसित तथा समाप्त होना आवश्यक है। इसमें पात्रों की नहीं, और भावों पर ही सबसे अधिक ध्यान देना उचित है। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी कृति को पढ़ने वाला यही कहे कि हां ठीक यही और इतनी ही बात पर्याप्त है। बस इसी में ही पाठक, लेखक को अपना लक्ष्य बांधने में सफल समझ लेता है। साधारणतः किसी भी आख्यायिका में मानसिक अथवा प्रकृति का विश्लेषण और वस्तु—

परिचय कराते। कहानी में इस प्रकार की स्वानुभव मूलक तथा परकीय-
अनुभवमूलक परिस्थितियों के विकास के लिये लेखक में तीव्र।
कल्पना शक्ति होनी चाहिये। क्यों कि बिना इसके कोई भी लेखक
कोई रोचक रचना नहीं कर सकता। और इस कल्पना शक्ति को
जगाने के लिये काव्याध्ययन, भ्रमण तथा सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण
भी आवश्यक है। किन्तु अकेले परिस्थितियों की कल्पना से कोई
काम नहीं चलता। उनका विकास भी यथाक्रम होना चाहिये।
पाठक और श्रोता असमंजस में आ जाना तो पसन्द करते हैं परन्तु
लहना नहीं। "अच्छा तो उसका यह मतलब हुआ और इसका यह
यह तो मैं पहले ही जानता था।" इत्यादि आश्चर्य सूचक
वाक्य या वाक्यांश, शब्द तथा भावस्पन्दन भी पाठकों के मुँह
से निकलने आवश्यक हैं। इसी बात से पाठक की पढ़ने में रुचि
रहती है।

कुछ आख्यायिकाओं में सर्वप्रथम उपाख्यान (प्रधान नायक)
का निश्चय करा देना आवश्यक है। चाहे पात्र अनेक हों किन्तु प्रधान
पात्र को लक्ष्य बनाकर रचा हुआ आलेख्य चित्र ही प्रभावशाली
होगा। लेकिन अन्य पात्रों का आवश्यक परिचय भी त्याज्य नहीं।
आख्यायिका में प्रयुक्त वस्तु तो स्वल्प और कम भी बहुत ही स्पष्ट
तथा प्रत्यक्ष होनी चाहिये। घटना के साधारण होते हुए भी
उसमें नवीनता और कौशल आवश्यक है। तात्पर्य यह कि कहानी
के प्रारम्भ अर्थात् उपक्रम और परिणाम अर्थात् निर्वहण सन्धि दोनों

दृष्टि में रखकर लिखने से ही सफलता मिल सकती है। अतः मनुष्य को अपने भविष्य की उज्ज्वलता पर पूर्ण विश्वास होवे। साथ ही दुनिया का थोड़ा बहुत अनुभव अपना या पराया भी होना अत्यन्त आवश्यक है। केवल इन्हीं दो बातों को अपना लेने से मनुष्य एक सफल कहानी लेखक बन सकता है। यद्यपि हमारा वर्तमान कहानी संसार स्त्री-पुरुष के प्रेम की सफल और असफल भावनाओं तथा वासनाओं की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले साहित्य की ही रचना कर रहा है। बेकारी की विकट समस्या में फंसा रहने से वह इसमें भी आगे पीछे न जाकर जहां का तहां रुका है। किसी नव उत्साही उत्कृष्ट लेखक द्वारा उसमें प्रगति नहीं लाई जा-सकती+ रही है+ किन्तु फिर भी बहुत से लेखक साहित्य संसार में होनहार बालकों की भांति कभी कभी आगे बोलकर विश्व साहित्य की प्रगति का सूक्ष्म अवलोकन कर अपने वर्तमान साहित्य को उसी ऊंची आदर्श सीमा तक पहुंचाने की चेष्टा में प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं। अन्त में हमारा सम्माननीय सबसे निवेदन है कि इस क्षेत्र में अवतीर्ण होने वाले साहित्यिक शिशुओं को अपने भावी जीवन की आशा लतिका को सर्वदैव हराभरा रखने के लिये यह बात गांठ बांध लेनी चाहिए कि वर्तमान और भविष्य समाज को कैसे साहित्य की जरूरत है। यह जानकर और तदनुसार अपनी योग्यता तथा परिश्रम को व्यय करने से हिन्दी कहानी साहित्य की स्थिति आशामय प्रतीत होती है। किन्तु इसे कुछ काल पूर्व की अपने समाज से ही नहीं अपितु अन्य भी कई

साहित्यिकों से बिछुड़ना पड़ा है। और आजदिन तक भी उनके अनुगामियों की आह भरी करुणाजनक सिसकियां हमारे कानों में पड़ रही हैं। पुन उसी स्थान पर आसीन होने वाले किसी महान साहित्यकार की प्रतीक्षा में ये दोनों लोचन आकुल हैं। देखें। भगवान् कब वह शुभदिन दिखावेंगे॥

साहित्य की चर्चा करते समय कई बेअक्ल-समालोचक अक्ल मे ताला ठोक कर बक दिया करते है कि 'महाशय श्री १०८ शेक्सपीयर जी अंग्रेजी साहित्य के कालिदास है, अथवा कालिदास जी संस्कृत साहित्य के शेक्सपीयर है'। इन बिचारे भोले लोगो पर अत्यंत हंसी आती है, जो निष्काम भाव से शेक्सपीयर महोदय की इम्पोरटेन्स बढ़ा कर कविकुल-चूड़ामणि श्री कालिदास जी को रेढ मारते है। बिचारे शेक्सपीयर को ऐसे ऊंचे टीले पर बिठा दिया है कि यदि कोई एक तिनका भी लगा दे, तो उल्टे खोपड़े धड़ाम से ऐसे आ टपकेंगे कि जैसा पका हुआ ५ सेर का नारियल। जरा अकल की बात है, कि क्या कभी सूरज और जुगनू, शेर और सियार, हंस और कौआ, भागीरथी और टेम्ज, हिन्दुस्तान और इंगलिस्तान एक साथ रह सकते हैं? क्या इन का आपस मे तुलना हो सकती है? जैसे यह असम्भव है, इसी तरह कालिदास और शेक्सपीयर को भी एक तराजू मे तोलना त्रैलोक्य मे भी असंभव है। परन्तु आजकल के बेअक्लों के जमाने में अक्ल के दुश्मनो ने ऐसा करने मे भी कोई कसर नहो रक्खी।

बाप रे बाप! यह तो बड़ा अपशगुन हो गया। इन मूढ़ लोगों ने तो, एक म्लेच्छ को आर्य्य के साथ बिठा दिया। ऐसा घोर पाप कर दिया है, जो सहस्र तीर्थस्नान करने पर भी धुल नहीं सकता। खुदा बचावे ऐसे लोगों को।

ओ कविकुल चूड़ामणे! क्या ही अच्छा होता कि तुम इस पुण्यभूमि आर्यावर्त पर अवतार न लेते, जिससे ये नादान लोग तुम्हारा ऐसा अनादर कर सकते। अगर लेना भी था तो अरब के सूखे रेगिस्तान मे या मुसलमानो की नीरस कब्रिस्तान मे, जहॉ तुम्हारी यह कविता कमलिनी अंकुरित ही न हो सकती, और न यह एक गधे का आभूषण बनती। तुमने आते हुए यह भी नही सोचा कि ये लोग मेरी क्या गत करेगे। इस नादान दुनिया ने क्या २ नही किया। इसने तो अमूल्य सुवर्ण को भी एक तुच्छ वस्तु- गुञ्जा से तोलने मे भी किसी तरह की कसर नही रक्खी। ऐसी अवस्था मे यदि तुमको शेक्सपीयर के साथ जोड दिया, कौनसा ताज्जुब है। अस्तु॥

हे कविपुंगव! तुम अब स्वर्गपुरी मे बैठे

महाराज इन्द्र की देवगोष्ठी को सुशोभित करते रहो। अब फिर कभी इस मर्त्यलोक मे अवतीर्ण हो कर अपनी शुभ्र कीर्ति चन्द्रिका मे ऐसा अमिट कलङ्क न लगवाना। इस भूतल पर आविर्भूत हो कर चारु चन्द्र भी कलङ्कित होगया है। बस क्या करे, अब तो हमारे अश्रुजल ही तुम्हारे इस कलङ्क को धो सकते है।

इस घोर अन्याय पूर्ण कलियुग मे तो मूर्ख गधा होना ही भला है। बे अकली का बोझा ढोकर गुजारा करने वाले कैसे मजे से विचरते है। अकलमन्द, पोथियां पलटने वाले बिचारे पांव तले रोंदे जाते है, सब कोई अवहेलना करते है। इस तरह जीते रहने से तो मर जाना ही बेहतर है। अगर तुम भी इस मर्त्यलोक पर न आते तो ऐसे म्लेच्छ के साथ मुकाबिला न करना पडता। अब जो कुछ होगया सो होगया। आगे से ऐसी सख्त ग़लती न करना।

मेरे इन तुच्छ कथनों का यह बिलकुल अभिप्राय नहीं है, कि शेक्सपीयर में कुछ नहीं था। महान् पुरुषों के अन्दर कोई न कोई खासियत तो होती है। शेक्सपीयर भी एक आलेखने का शायर था। उस की कृ-

तिओ मे एक अपूर्व स्वाभिमत थी जिस के कारण उस को इतने ऊंचे आसन पर बैठने का श्रेय प्राप्त हुआ। वह मानव हृदय के आन्तरिक भावो और विचारो को एक मूर्तरूप इतना एक्सपर्ट था जितना एक होशियार कारीगर किसी कला को। वह भी एक चतुर कारीगर था।

इन सब बातो के होते हुए भी हम शेक्सपीयर को कालिदास का स्थान कभी भी नही दे सकते। वह तो दुनिया मे उस विश्वकर्मा की अलौकिक, अनुपम, अद्भुत कृति थी। उस के हरेक शब्द मे ही नही अपितु एक एक अक्षर मे साहित्यिक सरसता, सारल्य और स्वर्गीय सौरभ भरा हुआ था। जिस महाकवि के कारण आज भी इस दीन भारत का मस्तक उन्नत है, जिसके नाटक और काव्यो को पढ़कर विदेशी लोग भी दातो तले अंगुली दबाते है जिस के अभिज्ञान शाकुन्तल और रघुवंश ने सोई हुई पाश्चात्य दुनिया की आंखे खोल दी है; क्या उस कविकुलदिवाकर की एक तुच्छ टिमटिमाते हुए खद्योत महादीप से तुलना कर सकते है? कभी नही त्रिकाल मे भी नहीं। किसी अज्ञात मन्द कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है— पुरा कवीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठिका धिष्ठित कालिदासा। अना-

पि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव'॥ इस लोक-
प्रसिद्ध उक्ति की उपेक्षा करके जो बेअक्ल अपनी अलग तूती
बजाना चाहता है, उस की यही गत होती है, जैसे
पथभ्रष्ट क्रमेलक की या लीग भ्रष्ट मि० जिन्ना की। इस लिए हम
नवयुवक, जो राष्ट्रीय साहित्य के आधारस्तम्भ है, इस उक्ति के साथ
सहमत होकर उस महान् कवि को म्लेच्छ प्रतिद्व-
न्दो से बचावे।

यदि आप निष्पक्ष हो कर देखे तो आप-
को साफ साफ मालूम हो जायगा कि कालिदास और
शेक्सपीयर में आसमान, पाताल का अन्तर है। न तो
स्वयं इंगलिश वर्ड्स मे कोई स्वाभाविक माधुर्य, है स
रसता है, और नाही बिचारे शेक्सपीयर में कोई ऐसी
शक्ति थी, जिस से उस शुष्क मरुस्थल मे कुछ पैदा कर
सके। क्या कभी कोई हाथ मे भाले को हिलाता हुआ (शेक्सपियर)
सूखे, ऊसर रेगिस्तान मे खेती कर के सुमधुर अनाज को
पैदा कर सकता है। दूसरी तरफ क्या कोई होनहार
स्वर्गपुरी के सरस कुसुमों से
हरे भरे नन्दनवन मे विहार करता हुआ नीरस हो सकता

है? भारतवर्ष अनादि काल से संपूर्ण भूमण्डल का स्वर्ग बना हुआ है। अमन्द मन्दाकिनी का कल कल करता हुआ मधुर कल्लोल कोलाहल, हिमाचल की तुषार-शुभ्र उन्नत गिरिमाल और उसके सघन कुञ्जों से हरे भरे तपोवन, झर्झर करती हुई निर्झरिणियां, ऋषि मुनियों की सुत वत्सल हरिणियों का चञ्चल उत्प्लवन इत्यादि सम्मत प्रकृति प्रदत्त उपहारों से विभूषित यह आर्यावर्त अपूर्व स्वर्गोपिता का परिचय दे रहा है। स्वर्गपुरी के नन्दन वन में विहारिणी काव्य-कोकिला जिस सरस, मधुर पञ्चम रागिणी से सहृदयों के हृदयों को सरस कर सकती है, क्या कभी शुष्क, नीरस भरे ऊजड़ मरुस्थल की काक वराकिनी अपनी क्रूर कृति से उस सरसता का पान करा सकती है? कभी नहीं। वह तो कर्ण कुहर को फाड़ने के सिवाय और कर सकती है? इस महान भेद के प्रत्यक्ष रखते हुए भी न जाने किस अकल के मारे ने इन दोनों को एक दूसरे से मिलाने की कोशिश की है, मुझे तो यही प्रतीत होता है कि किसीने उन दोनों के एक वर्ण को देख कर ही उन्हें एक पिंजरे में बन्द कर दिया है। परन्तु यह काक और कोकिल कब तक छिपे रह सकते हैं। यदि आप काक महाशय के 'कर्णकटु' राग को कोकिल की मञ्जुल पञ्चम रागिणी से विश्लेषण करेंगे

राजहंस

. . . .

तो दूध का दूध और पानी का पानी अलग हो जायगा। आज कल के इस साइन्स के जमाने मे भी कोई इस नीर क्षीर के मिश्रण का विश्लेषण नही कर सका है। अब तो हम मानस के राज हंसो का ही कवि है। इस का यथोचित विश्लेषण कर के हम दिखा दें कि आज भी यह दीन भारत का मानस नीरक्षीर विवेचक राज हंसों से खाली नही है।

अब नीर क्षीर के मिश्रण का विश्लेषण 'एक्को मीटर' नामक पेटेन्ट यन्त्र से इस प्रकार किया गया है—

नीर — Tired with all these, for restful death I cry—
As, to behold desert a begger born,
And needy nothing trimm'd in jollity,
And purest faith unhappy forsworn
(The world's way)

क्षीर — प्रस्थस्तुषारैर्गिरि निर्झराणा—
मनोकहाकम्पित पुष्पगन्धी।
तमातपक्लान्तमनातपत्रम्
आचारपूतं पवन: सिषेवे॥
(रघुवंश)

"लेखक, गल्पिक और कवि"

ले० श्री यज्ञदत्त जी 'भगत'

एक दो तीन। मैं एक पर लेखनी उठा चुका हूँ। "दो दोस्त" को भी आप पढ़ ही चुके हैं। रहा तीन सो इस पर भी आज विचार करते हुए हैं। तीन की त्रिकुटी में सब फँसे रहते हैं। आर्य सिद्धान्त का विद्यार्थी जीव प्रकृति और परमात्मा की त्रिकुटी में फँसा हुआ है। आयुर्वेद के विद्यार्थी को वात, पित्त, कफ चैन नहीं लेने देते। सभाओं के मंत्रियों को जलसा, चन्दा और अधिवेशनों से फुर्सत नहीं। लीडरों को भी तीन की ही शिकायत रहती है। उनके पास वक्त नहीं है और देश दुर्दशा पर चन्द शब्द अविच्छिन्न स्पीच कहने से चैन पड़ता है। देशी नरेशों को रेजीडेन्ट, अंग्रेज अभ्यागत, और यूरोपीय होटलों के बिल चैन लेने नहीं देते। पूँजीपतियों के दिमाग में मजदूरों की माँग, प्रदर्शनों का डेपुटेशन और हड़ताल का भूत चक्कर लगाया करता है। विद्यार्थी वर्ग भी इससे तंग है। परीक्षा, पुस्तक और इम्तिहान। कहने का तात्पर्य यह कि जिधर देखो त्रैतवाद का भूत मशीनगन लिए लोगों को निशाना लगाते नजर आता है। और मजा तो यह है कि हमारे हिन्दी साहित्य में भी तीन ही विभूतियों की

अनुभूतियां हो रही है। ये लेखक, कवि और गायक हैं।

पहले हम लेखक को पहले लेते हैं। लेखक वे हैं जो लिखते तो हैं पर कविता और गल्प पर अपनी वेणु लेखनी उठाने से बाज आवें। हिन्दी लेखकों की उपजाऊ भूमि में तो काशी, हरिद्वार की पुरानी भूमि का गुरुकुल आदि कतिपय प्रसिद्ध स्थान हैं। लेखक गण प्राय अपना वेशभी पृथक् सिद्ध करते हैं। बिना गले का कुर्ता तो सभी बिना अचकन के घूमेंगे ही पर चश्मा भी हो तो अच्छा है। अस्तु।

जो लेखक सिद्धहस्त हैं, और समाज को अपने ज्ञान किरण से प्रकाशित करते हैं ऐसे लेखक प्रथम कोटि के हैं, उनके विषय में कुछ नहीं कहना। इन के इतर लेखक भी हैं जो अपनी अज्ञान किरण से समाज से रुपया खींच रहे हैं। हरेक साहित्य सम्मेलन में अपनी अपनी शकल ले हाजिर होते हैं। ऐसी ऐसी बेतुकी और बेसिर पैर की देते हैं कि जन कल्याण की जगह जनापकार की उत्पत्ति होती है। उन्हें केवल प्रसिद्धि और रुपये की आवश्यकता है। इस के लिए वे विविध कृतियों से समाज की चक्षुओं में धूल झोंकते रहते हैं। इन महानुभावों को यह कभी भी

यह पसन्द नहीं कि हिन्दी साहित्य में लेखक बढ़े, क्योंकि यदि लेखक बढ़ गए तो उनकी रोजी मारी जाती है। इनके मानसागर में वे पुस्तक-सरिताएं निरन्तर शान-बान लाकर उड़ेला करती हैं जो कम मनुष्यों ने पढ़ी होती हैं। उन पुस्तकों की सूक्तियों से ही प्रायः वे अपनी रचनाएं लादते रहते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि इसप्रकार के लेखक, निम्न प्रकार की पुस्तक-भूमिकाओं को कबतक दुहराते चले जाएंगे - अमुक विषय पर जहां अंग्रेजी में अनेक छोटी बड़ी पुस्तकें हैं वहां हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी इससे सर्वथा रहित है। यह सोचकर मैंने यह उपयोगी पुस्तक, अमुक देश के प्रसिद्ध ग्रन्थकार अमुक महाशय की अमुक प्रसिद्ध पुस्तक के आधार पर लिखी है। यदि हिन्दी साहित्य में यह पुस्तक थोड़ी भी उपयोगी सिद्ध हुई तो मैं अपने यत्न को सफल समझूंगा और भविष्य में फिर नई पुस्तक के साथ सेवा में उपस्थित होने का साहस करूंगा।" इस प्रकार की भूमिकाएं हमें प्रायः हिन्दी पुस्तकों में पढ़ने को मिला करती हैं। ये बातें वास्तव में हमारे साहित्य की दुर्दशा का चित्र खींचने वाली हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं-

जिनसे ज्ञात होता है कि एक विषय की बीसियों पुस्तकें लिख-
चुकी हैं फिर भी ये नकाब लेखक हिन्दी के साहित्य की
न्यूनता का ही रोना रोकर अपनी तीसरे दर्जे की किताबों की
बिक्री बढ़ाने का असफल यत्न किए जा रहे हैं। असल में
इन लेखकों का उद्देश्य हिन्दी साहित्य भरने का न होकर
उदर कुण्ड भरने का है। इन लेखकों से ईश्वर ही बचावे।

एक लेखक मिले। जो नए भी थे और
पुराने भी। नए तो इसलिए कि ~~[illegible]~~ उनकी रचनाएं
पत्रिकाओं में आजतक कम छपीं थीं। और पुराने इसलिए
कि वे वास्तव में ही बहुत पुराने समय से लिखते आरहे थे
जब मैं उनके पास पहुंचा तो वे १९५० की सरस्वती का
पुराना संग्रह टटोल रहे थे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे अपनी
कृति देख रहे हैं कि वह छपी है या नहीं! १९५० में
उन्होंने भेजी थी और आज चार साल हो जाने पर भी नहीं
छपी यही महदाश्चर्य उन्हें खोते खिला रहा था। बहुत
देर तक बातें होती रहीं; अन्त में उन्होंने कहा कि मैं एक
लेख लिख रहा हूं। जिसे यह कहकर उन्होंने सुनाना
शुरू किया। मैं सुनता गया। बीच में कहने लगे कि यदि

. . . .

आप इसकी समालोचना — अच्छी या बुरी — जैसे चाहे — लिखें तो मैं बहुत उपकृत हो जाऊँगा। मैंने आश्चर्य से पूछा — बुरी लिखने को आप क्यों कहते हैं? उन्होंने आतुर-शिकृता के अक्षरों में कहा इससे भी लेखक को बड़ा फायदा रहता है।

उपरोक्त दृष्टान्त हमारे लेखकों की और साहित्य की दुर्दशा पर प्रकाश डालता है। एक लेख लिखा गया है जो उपयोगी मालूम पड़ता है उसे यहाँ उद्धृत करते हैं —

अब हम आविष्कार के विषय में कुछ कहने का आरम्भ करते हैं। हिन्दी साहित्य में कहानी साहित्य ने पर्याप्त उन्नति की है अत सन्तोष है। पर दुःख इस बात का है कि नये और नई कहानी लेखक भी जहाँ तहाँ दिखाई पड़ जाते हैं। ये लोग भी रुपये की खातिर में साहित्य का हलाल करते फिरते हैं। दुःख का विषय है कि आज हमारे कहानी साहित्य में आधी कहानियाँ अनूदित हैं। और अनुवाद भी अंग्रेजी की उन रद्दी कहानियों का जिनका स्थान अंग्रेजी में रद्दी के बराबर है। अनुवाद बड़ी चीज़ नहीं तो भी मर्यादित तो अवश्य

त है थी। एक अनुवादक महोदय ने किसी खोन्चेवाले से
एक पैसे के छोले लिए। जिस कागज़ में छोले मिले वह
किसी अंग्रेजी अखबार का पुराना पन्ना था और उसमें एक
छोटी सी कहानी दर्ज थी। उन्होंने उसे सम्भालकर रख
लिया। कालान्तर में मैंने वही पन्ने वाली कहानी किसी
मासिक पत्र में पढ़ी और उस पर टिप्पणी थी कि अंग्रेजी
पत्रों में जो समय २ पर अच्छी २ कहानियां निकलती हैं
उनमें से एक। इस प्रकार हम कहानी साहित्य की दुर्दशा पर
भी बहुत देर तक आंसू बहा सकते हैं।

कवि का परिचय भी संक्षेप में
कराना चाहते हैं। यद्यपि आजकल कवियों का पक्षी
बनने का भूत, जैसे - मयूर, चातक, हंस, कलहंस, मैना -
तो उतर चुका है पर अन्य कई रोगों ने पीछा ले लिया है
छायावाद का यहां कुछ हद तक उपयोग स्वीकार किया
जाता है। वह तो ठीक है, फिर भी बहुत से कवि जहां
तहां इसका दुरुपयोग करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।
हर प्रसंग शब्दों को तोड़कर छायावाद के पिंजड़े में बन्द
कर के जनता की अज्ञानता पर तरस खाकर बहुत से कवियों

. . . .

का स्वभाव सा हो गया है। अतः जब ऐसे कवियों की दाल हिन्दी साहित्य में नहीं गलती तो वे हिन्दी साहित्य को कोसते हुए साहित्य सेवा से पृथक् हो जाते हैं यह हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य है।

"इस शर्त पर जो लीजे तो हाजिर है दिल अभी।
रंजिश न हो, फरेब न हो, इम्तिहाँ न हो।"

सङ्गीत

ले० श्री विद्यासागर जी

आधुनिक भारत में जिस प्रकार हमारी राजनैतिक तथा सामाजिक अधोगति चरम सीमा तक पहुंच गई है उसी प्रकार हमारी मानसिक अधोगति की भी कोई सीमा नहीं है। प्राचीन भारत ने जो उन्नति की थी उस का लेशमात्र अब हमारे पास बाकी नहीं है। शिल्प तथा दूसरी ललित कलाओं की उन्नति द्वारा हम ने सब को चकित कर दिया था और इस समय भी अजन्ता की गुफाएं और सांची के स्तूप पाश्चात्य विद्वानों को चकित कर देते हैं। इसी प्रकार भारतीय सङ्गीत कला ने भी यथेष्ट उन्नति की थी, जो अब प्राय लुप्त सी हो गयी है। अवशिष्ट कला मुसलमानों और योरोपीय संस्कृति द्वारा इस प्रकार रङ्ग दी गई है कि उस का सुन्दर स्वरूप विकृत हो गया है। इसी कारण ही हमारे देश में शुद्ध संगीत का बड़ा अभाव सा प्रतीत होता है।

इस अविच्छिन्न संगीत को भी आज पूर्ववत् तीन भागों में विभक्त करते हैं। इस के ये तीन भाग गायन, वादन और नर्तन बहुत प्रसिद्ध हैं। इन को क्रमशः ले कर इन पर थोड़ा २ प्रकाश यहां डालेंगे।

प्रचलित गायन को भी साधारणतया ६ भागों में विभक्त किया गया है। उन के नाम क्रमशः (१) ध्रुवपद, (२) ख्याल, (३) टप्पा, (४) ठुमरी, (५) होली, (६) गजलें, (७) तराना, (८) चतुरङ्ग, (९) सरगम हैं। इस प्रकार के नव गायनों में सर्वप्रथम स्थान ध्रुवपद का है। इस में चार अवयव (१) स्थायी, (२) अन्तरा (३) सञ्चारी (४) आभोग प्रयुक्त होते हैं। किसी २ गायन में स्थायी और अन्तरा का ही प्रयोग होता है। इस में वीर, शृङ्गार व शान्त रस प्रधान होते हैं। इस में भाषा भी ऊंचे दर्जे की प्रयुक्त होती है। इस में ताल केवल चौताल, सूलफाग, झंपा, तीव्रा, ब्रह्म और रुद्र आदि प्रयुक्त होते हैं। इस में तान का बहिष्कार किया हुआ है तथा च दुगुन, तिगुन, चौगुन, बोलतान और गमक इत्यादि इस में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु ख्याल के अधिक लोकप्रिय हो जाने से ध्रुवपद की उन्नति रुक सी गई है। इस के बाद 'ख्याल' का स्थान है। ख्याल फारसी का शब्द है, इस का अर्थ कल्पना या स्वेच्छाचार होता है। इस में शृङ्गार का प्रयोग अधिक होता है।

[illegible]

इस में प्राय स्थायी और अन्तरा ही होते है। इस में ताल त्रिताल, तिलवाड़ा (विलम्बित त्रिताल) एकताल झूमरा आड़ा चौताल आदि का प्रयोग है। साथ ही जलद तान गिटकरी का आदि का प्रयोग भी है इस से गान सुन्दर आ जाता है टप्पा में उन्हीं तालों का प्रयोग होता है जिन का ख्याल में रहता है। इस में केवल शृङ्गार रस होता है। साथ ही यह प्राय काफी झिंझोटी, पीलू, बरवा माण्ड भैरवी और खमाज आदि में ही गायी जाती है। इसकी तानें छोटे २ टुकड़ों की बनी होती है और इस की गति बहुत चपल होती है। इस के गाने का ढंग ख्याल व ध्रुवपद से बिल्कुल निराला है। ठुमरी में शृङ्गार रस की प्रधानता रहती है। यह अधिकांश त्रिताल में गाई जाती है, चपल गति की होती है। टप्पे वाले रागों में यह गायी जाती है। बनारस और लखनऊ शहर ठुमरी की गायकी के लिये मशहूर है। होली को ध्रुवपद के गायक धमार ताल में गाते है तथा ख्याल गायक व दीपचन्दी ताल में गाते है और मनमानी तानबाजी करते है। इस में प्राय कृष्ण और गोपियों की फाल्गुन मास की लीला का वर्णन होता है। गजलें [illegible] पश्तो व दीपचन्दी तालों में गायी जाती है। मुख्य रस शृङ्गार है। इस में अन्तरों की भरमार होती है जो कि एक समान गाये जाते है। जिन रागों में टप्पे ठुमरियाँ गाई जाती है वे ही इस में भी प्रधान होते है। इस में आशिक व माशूक के प्रेमोद्गारों का वर्णन किया जाता है।

तराना ख्याल गायक ही गाते है। इस में शब्दों का अधिक महत्व नहीं है केवल राग और लयकारी का ही मजा है। तराने में ना, ता, रे, दाने, ओदानि, तोंम, यलली, यलुम, तदरेदानि इस तरह के शब्द रहते है। कभी तराने मे मृदङ्ग के शब्द भी रख दिये जाते है। तराने का गायन लय को आनन्द प्रद मालूम होता है। चतुरङ्ग पद, सरगम, तराना और तिरवट इन चारों अङ्गों से युक्त गायन होता है। पहले अङ्ग में गाने के शब्द, दूसरे में जिस राग का चतुरङ्ग होता है उस राग में बंधी हुई छोटी सी सरगम होती है। तीसरे मे तराने के शब्द होते है और चौथे अङ्ग मे मृदङ्ग का छोटा सा परन होता है। इन्हें ख्याल की तरह गाये जाते है। सरगम किसी राग में लगने वाले स्वरों की तालबद्ध सुन्दर रचना होती है। इस प्रकार के गानों में केवल स्वर ही होते है, शब्द नहीं रहते। स्वर ज्ञान और राग ज्ञान ही इस का मुख्य उद्देश्य है।

वादन में भिन्न २ वाद्यों का बजाया जाता है। ये वाद्य गायन की शोभा बढाने के लिये होते है। आजकल केवल तम्बूरा, सारंगी, वीणा, सितार, दिलरुबा, इसराज, सरोद, जलतरङ्ग, बेला, बांसुरी, तबला, मृदङ्ग आदि देशी वाद्यों का प्रयोग बच रहा है। इन के अतिरिक्त हारमोनियम का प्रचार बहुत बढ गया है। इस ने तो सर्व साधारण के घर में प्रवेश पा लिया है। आजकल जापानी वाद्य बैंजो का प्रचार भी बहुत बढ रहा है।

इन के बाद नृत्य का स्थान है। अपने मनों को प्रगट करने के लिये इस का प्रयोग है। इस नर्तनकला के तीन भेद किये गये हैं (१) नाट्य (२) नृत्य (३) नृत्त। फिर नृत्य के भी दो भेद किये गये हैं (१) लास्य (२) ताण्डव। सुकुमार नृत्य को लास्य कहते हैं और यह अधिकतर स्त्रियों के लिये ही उपयुक्त है। उद्धत नृत्य को ताण्डव नृत्य कहते हैं और यह अधिकतर पुरुषों को ही शोभा देता है।

भारत में अभी दो प्रकार का नृत्य जीवित है। उत्तर भारत का कथक नाच और दक्षिण भारत का कथाकली। इन के सिवाय दक्षिण में देवदासी नाच भी प्रसिद्ध है। तञ्जौर के इलाके का [illegible] प्रकार का नाच भी बड़ा सुन्दर होता है। दूसरा नाच भी है जिसे लोक नृत्य करते हैं जैसे गुजरातियों का गर्बा नृत्य। कथक नाच (लास्य) और कथाकली अधिकतर ताण्डव है। कथक का अर्थ है कथा कहने वाला। इस में श्रीकृष्ण तथा गोपियों की प्रेमलीला के भाव, गोवर्धन धारण, चीरहरण दृश्य आदि भाव अधिक दर्शाये जाते हैं। यह सब हावभाव मुख और मुद्राओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। इस कथक नाच का लखनऊ में अधिक प्रचार है। यही तीन मुख्य नाच प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान हिन्दी कविता की प्रगति

(श्री ब्र. सत्यदेवजी १३ ग उपाध्याय उर्फ प्रदोउपा)

संघर्षण में विद्युत का निवास है। दो सभ्यताओं के दो पर्वतीय शिखरों के संगम में तीव्रता है, और है उतावला-पन। उन के संधिभाग में नई कला की अभिव्यक्ति है। उषा की उषा में आने वाले दिन का प्रकाश निहित है।

उन्नीसवीं शताब्दि प्रतिवाद की पताका लेकर इस भूतल पर अवतीर्ण हुई। चारों तरफ - क्या राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और क्या वैयक्तिक क्षेत्रों में - सर्वत्र ही प्रतिवाद के गढ़ बाँधे जाने लगे। भारतवर्ष भी इस लहर से अछूता न बचा। इस समय भारत में विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ चुकी थी। दो सभ्यताओं के सम्पर्क से विचारों को नयी उत्तेजना मिली। राजा राममोहन राय और महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने यहां भी प्रतिवाद की नींव डाली। और इधर-उधर चारों ओर नए विचारों की लहर फैल गई। उन लोगों को भी जो कि इस प्रकार में नहीं बहना चाहते थे, अपनी प्रथाओं को कायम रखने के लिए प्रतिवाद का आश्रय ~~लिया~~ / लेना पड़ा। इस प्रकार सब ओर प्रतिवाद और विचार स्वातन्त्र्य की मोटी बड़ी सी लहर बहने लगी।

साहित्य अपने समय का और अपने समाज का प्रतिबिम्ब होता है। इस दशा में साहित्य भी अछूता न बचा। सारा साहित्य नवीन विचारों से परिपूर्ण होकर ज्योतिर्मयी शतदल की तरह विकसित होने लगा

राजहंस

हमारी कविता भी उजागर हो उठी। वह अपनी स्थविरता का परित्याग कर आगे बढ़ी और सामयिक प्रवृत्तियों के अनुकूल सब रंग बदल कर शिक्षित जनता के सान्निध्य में आ गई। साहित्य में इसके प्रतीक हुए श्री बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी। इस काव्य-गगन-नवेन्दु में विकास की आभा भरी थी। यह ठीक है कि विशुद्ध काव्य-समीक्षा की दृष्टि से उनकी रचनाएं सूर या तुलसी की कोटि को नहीं पहुंचतीं; और यह भी ठीक है कि, उनकी वाणी में कबीर और जायसी का माधुर्य नहीं है। किन्तु इस से क्या? उनका महत्व तो इस में है ही नहीं। उनका वास्तविक महत्व, परिवर्तन उपस्थित करने में और साहित्य को नूतन दिशा में ले जाने (ले चलने) में है, उच्च-कोटि का साहित्य-निर्माण करने में नहीं। परिवर्तन करने वाले का कितना महत्व है, इस का अनुमान हम इस से लगा सकेंगे कि जिस श्रृंगार के अविच्छिन्न प्रवाह को हिन्दी के वीर कवि भूषण रोकने में सफल न हुए, उसे उन्होंने रोक दिया।

अब तक ब्रज भाषा कविता की माध्यम थी। और कवित्त, सवैया आदि का प्रचार था। ब्रज भाषा के माध्यम पर विचार होने लगा। हिन्दी-गद्य में खड़ी बोली आ चुकी थी। क्योंकि ब्रज भाषा इसके अनुपयुक्त थी, और श्रृंगार-बाहुल्य के कारण 'ब्रज वनिता' 'रति भावना' की तरह पड़ी सोती रही। इस [illegible]

राजहंस

खड़ी बोली अपने प्रारंभिक काल में कर्कशता लेकर आई। इसका कारण भी मानते हैं कि द्विवेदी जी पर मराठी का प्रभाव था, जिसे गुप्तों ने पीछे अनुगमन किया। और यह प्रभाव हम उनकी प्रारंभिक कविताओं पर देखते हैं। पीछे द्विवेदी जी स्वयं सँभल गए, और दूसरों को भी सँभाल लिया।

वर्तमान हिन्दी कविता का विकास दो तरह से किया जा सकता है। एक-भाषा और शैली के सम्बन्ध से और दूसरा विचार के सम्बन्ध से।

वर्तमान हिन्दी पर उर्दू, ब्रज और संस्कृत का प्रभाव पड़ा है, जिनकी अधिक छाप इसमें यत्र-तत्र स्पष्टतया झलकती है। उर्दू के साथ तो इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। और उसके मुहावरे इसमें ठीक ठीक बैठते हैं। पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ने इन उर्दू-बहरों का हिन्दी-कविता में सफलता-पूर्वक प्रयोग किया है। यथा —

बात बैठे बना सके तेरी,
हैं मुँह में लगे हुए ताले॥
बावले बन गए, न बेसमझे,
बाल की खाल काढ़ने वाले॥

इससे यह फ़ायदा तो है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक मिश्रित भाषा को समझ लेते हैं। किन्तु हिन्दी का जो हिन्दीपन है, वह ज़रूर नष्ट हो जाता है। आजकल का [illegible] प्रभावपूर्ण है। उर्दू के प्रभाव में हिन्दी उर्दू हो जाती है। इसे बचाने के लिए संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने लगा। इस दिशा में द्विवेदी जी ने ज़्यादा प्रोत्साहन दिया।

किन्तु इस से पहिले भी अकबर के समय महाकवि रहीम ने अपना मदनाष्टक मालती छन्द में लिख कर संस्कृत छन्दों की नींव डाली थी। इस तरह संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग कसरत से होने लगा। इस से कुछ कर तो झगड़ा उठ गया किन्तु नाप तौल का बन्धन मात्रिक वृत्तों से भी ज़ियादा बढ़ गया। कामेश्वर [illegible] के शब्दों में यह कहना उचित होगा कि वर्णवृत्त ऐसे समास वाले और विभक्ति प्रधान शब्दों के लिये ही उपयुक्त हैं, जो कि एक दूसरे के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हैं। इस का सार्थक उदाहरण हम हिन्दी के प्रथम महाकाव्य प्रियप्रवास में पाते हैं – यथा –

रूपोद्यानप्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दुबिम्बानना
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीडाकलापुत्तली,
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्यलीलामयी
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य सन्मूर्ति थी॥

इस में से यदि 'थी' 'की' और 'सी' को छोड़ दें तो कोई भी नहीं कह सकता कि यह हिन्दी है। इस शैली में इतना गुण अवश्य है कि [illegible] भाषा भाषी प्रान्तों में इसका भी [illegible] अर्थात् [illegible]

महाराष्ट्र और बंगाल आदि संस्कृत प्रधान प्रान्तों में भी इस की रोचकता उस तरह अछूती बनी रहती है, जैसी हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों मे । हिन्दी छन्दो में शब्दों की खींच और तान के लिये काफी गुंजाइश है, इस से इन में रोचकता और चपलता बनी रहती है । आजकल वीर छन्द का काफी प्रचार है । खड़ी बोली की कविता रोला, सवैया, हरिगीतिका आदि सब छन्दों मे हुई है । कुछ कविता लावनी के ढंग पर भी हुई है ।

श्रीधर पाठक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, सर्वश्री सियारामशरण गुप्त, पं. रामनरेश त्रिपाठी, गोपालसिंह नैपाली आदि कवियों ने वार्णिक और मात्रिक दोनों छन्दो मे कविता की है ।

इस समय खड़ी बोली कविता क्षेत्र में भी काफी आगे बढ़ चुकी है । जिधर देखो उधर नवयुग का सन्देश था, मानो प्रकृति अपने सहस्र मुखों से उसे सुनाने को मिल कर साथ गा रही हो ; वह सन्देश था स्वतन्त्रता का । जब सारा संसार स्वतन्त्रता के लिये लड़ रहा हो, तब उस की कविता पर [illegible] ? इसीलिये हिन्दी कविता में

क्रान्ति की चिनगारियां

अभी ३ दिसम्बर को लार्ड लोथियान भारत पधारे हैं उन के वक्तव्य से यह भलीभांति स्पष्ट है कि आज यूरोप किस नरसंहारक युग से गुज़र रहा है। उन का कहना है कि आज यूरोप में ५०० मील के घेरे में कम से कम पांच सौ बम बरसाने वाले जहाज घूम रहे हैं। इसी से स्पष्ट है कि आज किस क़दर यूरोप के नभोमण्डल में युद्ध के काले बादल मंडरा रहे हैं। सन् १९१८ में राष्ट्रपति विल्सन की चेष्टा से राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई। आज उसी नपुंसक राष्ट्र-संघ के देखते ही देखते एक तरफ़ तो वह सभ्यताभिमानी इटली अबीसीनिया को हड़प लेता है और दूसरी तरफ़ उसी का साथी जर्मनी उस बूढ़े शेर इंगलैण्ड की गर्दन पर चढ़ कर दहाड़ रहा है कि अगर तुम संसार में शान्ति चाहते हो, तो मेरे उपनिवेश वापस लौटाओ,

अथवा, हम अपनी जनसंहारक शक्ति के द्वारा तुम्हारा सत्यानाश कर देंगे। इतना ही नहीं; हम इस से भी आगे बढ़ना चाहते हैं। यह तो एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र के साथ किस तरह लड़ाई हो रही है, इस का वर्णन हुआ परन्तु एक ही राष्ट्र में भिन्न २ दलों में किस तरह संघर्ष चल रहे हैं, इस को भी पहले भली भांति जान लीजिए।

आज संसार एक ऐसे विकट चक्र से गुजर रहा है जिस के कि दोनों ओर द्वारा घातक वस्तुएं लगी हुई हैं। भिन्न २ दलों में संघर्ष चल रहे हैं। साम्यवादी और फैसिस्ट दोनों एक दूसरे को इस संसार से सदा के लिए उठा देने पर तुले हुए हैं। मज़दूरों और पूंजीपतियों में अलग ही खचखच चल रही है। दलित जातियां जो कि सदा से भारी जाति के पैरों तले रौंदी जा रही थीं, फिर उठ रही हैं और अपने प्रभुओं से हक की भिक्षा नहीं मांगतीं, बल्कि उसे अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते हुए बाहुओं के बल से ले लेना चाहती हैं। तो मेरा कहने का मतलब यह है कि आज सम्पूर्ण संसार केवल मात्र क्रान्ति के पथ से ही नहीं उजड़ें

रहा, अपितु सम्पूर्ण संसार की ताकतें आज एक बार फिर
रणाङ्गण में आने के लिये उत्सुक हो रही है। १९१४ के
महायुद्ध को देखकर लोगों ने यह समझा था कि वह
अन्तिम युद्ध है। उस समय यूरोपीय राष्ट्रों ने बड़े जोर
शोर से कहा था कि यह युद्ध युद्धों की समाप्ति के लिये
है War ends to war यूरोप के राजनीतिज्ञों ने शान्ति
का प्रलोभन दिया और संसार के युवक योद्धा समर क्षेत्र
में उतर पड़े। अकेले भारतवर्ष से ही न जाने कितने
अनगिनत माँ के लाल अपनी प्यारी माता की गोद छोड़
कर युद्ध के लिये भाग निकले। उस ब्रिटिश गवर्मेंट की
विजय के लिये जगह २ मन्दिरों तथा यज्ञ शालाओं
पर प्रार्थनाएं की जाने लगीं। भाग्यवशात् ब्रिटिश सूर्य
अपनी प्रखर किरणों के साथ अपनी विजय वैजयन्ती
फहराता हुआ बाहर आ निकला। इतनी सहायता करने
पर भी हमारे भाग्यों में क्या बदा था यह किसी से
छिपा नहीं है। उस विजय का [illegible], हम भारतीयों को
जो इनाम मिला, वह 'जलियान वाला-बाग' का शोणित-
तर्पण और असहयोग आन्दोलन के रूप में तो
मिला ही, परन्तु क्या किसी ने यह भी सोचा कि उन

अनाथ बच्चों और विधवाओं का क्या हाल हुआ जो कि बिलख२ कर अपना जीवन समाप्त कर गईं। उस समय अमृतसर में सब्र हुए२ जन समुदाय पर इस ब्रिटिश गवर्मेण्ट ने माताओं की गोद में पड़े हुए ६ ६, ६ ६, मास के निष्पाप बच्चों पर जिस कदर गोलियां चलाकर अपना अमानुषिक व्यवहार प्रगट किया, वह ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में काली स्याही द्वारा पाता जाने लायक है। उस समय एक विदेशी ने ६ ६, ६ ६, मास के नन्हें बच्चों के साथ बिलखती माताओं को देखकर भारतीयों के घाव पर "An Indian has no heart" कहकर जो नमक छिड़का था वह एक स्वाभिमानी भारतीय नवयुवक के हृदय में अगर चुभता नहीं है तो आज मैं अपने अन्तःकरण से ऐसा कहने को तैयार हूं कि उसे एक क्षण भी अपने आप को "भारतीय" कहला कर जिन्दा रहने का अधिकार नहीं है। इस उपर्युक्त प्रकरणान्तर घटनाचक्र का मैंने क्यों उल्लेख किया, यह तो मेरा हृदय ही जानता है और अगर आप का हृदय भी भारतीय भावनाओं से ओतप्रोत है, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप को भी समझते देर न लगेगी। अस्तु, वह १९१९

. . . .

का महायुद्ध किसी अच्छे या बुरे परिणामों के साथ समाप्त हुआ करोड़ों आदमी मारे गए विधवाओं के करुण क्रन्दन से संसार का वायु मण्डल हाहाकार कर उठा । इतना सब होने पर लोगों ने यह समझ कर धैर्य रक्खा कि यह अन्तिम युद्ध है ।

युद्ध समाप्त हुआ और जर्मनी की हार हुई राष्ट्रपति विल्सन की चेष्टा से राष्ट्र संघ का निर्माण हुआ पर वह बिल्कुल बेकार और नपुंसक संस्था साबित हुई इस के बाद निश्शस्त्रीकरण का दौर दौरा हुआ पर, कॉन्फ्रेंसों में तो राजनीतिज्ञ लम्बे २ लच्छेदार भाषणों से निश्शस्त्रीकरण पर ज़ोर देते रहे और उधर उन के घर घर वैज्ञानिक लोग प्रयोगशालाओं में नई २ विध्वंसकारी गैसों का आविष्कार करते रहे। वर्सेलीज़ की सन्धि द्वारा जर्मनी पंगु बना दिया गया था परन्तु वह तो मौका देखता रहा और मौका पाते ही अपने ऊपर जबरदस्ती लादे गए आवरण को उतार देकर और वर्सेलीज के सन्धि पत्र को फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया । सच तो यह है कि इन पराजित राष्ट्रों ने अशान्ति का बीज वर्सेलीज की सन्धि के समय ही

का दिया था और अब अपनी कद्र पाकर नष्ट करना ही चाहता है।

आज यूरोप की दशा कितनी भयंकर हो रही है उस का अगला Point भी भली भांति देख लीजिये।

अभी स्पेन का युद्ध पूरी तरह समाप्त ही नहीं हुआ कि चीन जापान का संघर्ष अपना पूरा जोर पकड़ चुका है। आज जापान चीन पर हाथ साफ कर रहा है तो मुसोलिनी और हिटलर उस की पीठ ठोक रहे हैं। दूसरी तरफ चीन भी अपनी शक्ति भर रूस का हाथ देखकर खून पसीना एक करता हुआ लड़ता चला जा रहा है। अगर आज चीन पर जापान की विजय हो गई जिस को कि रूस कभी सहन नहीं कर सकेगा तो जापान किसी भी यूरोपियन राष्ट्र के लिये खतरा साबित हो सकता है। जापान की इस बढ़ती हुई शक्ति को देख कर अमरीका और इंगलैण्ड उस की साम्राज्य लिप्सा को सहन कर सकेंगे, ऐसा कदापि सम्भव प्रतीत नहीं होता। आज भले ही इन राष्ट्रों को इस विष वृक्ष पर जो पानी पड़ रहा हो परन्तु य इसे भी नहीं पायेगा। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध इस लिये युद्ध नहीं करना चाहता,

क्योंकि इसे दूसरे राष्ट्र की शक्ति का बिल्कुल अन्दाज नहीं।
आज वह जर्मनी जो कि १९१४ के महायुद्ध में बिल्कुल पंगु
बना दिया गया था इतना समृद्ध हो चुका है कि उस के वर्तमान
सेवे सर्वा हिटलर के 'पद्धे' की आवाज सुनते ही
फ्रांस के होश फाख्ता हो जाते हैं। आज एक तरफ तो फ्रांस
जर्मनी को नीचा दिखाने के लिये अपनी सीमा पर जबर्दस्त
किलेबंदी कर रहा है तो दूसरी तरफ जर्मनी और इटली
फ्रांस को श्मशान भूमि बना देने के मंसूबे बांध रहे हैं।
सच तो यह है कि इस विकट समय में कोई राष्ट्र किसी पर
विश्वास करने को तैयार नहीं, इस लिये इस समय
जब कि यूरोप के नभ मण्डल में युद्ध के बादल मण्डरा
रहे हों तो किसी समय भी युद्ध की भेरी बज सकती है।
इन कारणों से युद्ध तो अवश्यम्भावी है। सन १९१४ के
राष्ट्रों ने युद्ध के लिये जितना व्यय किया था, आज उस से
कई गुना अधिक व्यय हो रहा है और होता चला जा रहा है।
१९१४ में न तो वायुयानों की इतनी उन्नति हुई थी और न तो
अजीबो गरीब विध्वंसकारी शस्त्रों का ही आविष्कार
हुआ था। लेकिन आज! आज तो ऐसे २ प्रलयंकारी
चीजों का आविष्कार हो चुका है कि जिन से पलक

करने मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने ऐसे २
जहरीले गैस तैय्यार कर लिये हैं जिन से कि बात की बात में
अनेकों शहर धूलिसात् कर दिये जा सकते हैं।
प्रिय पाठकवृन्द आप समझ गए होंगे कि ज़माना किस
द्रुतगति से विनाश की तरफ भागता चला जा रहा है।
वे शान्ति शान्ति चिल्लाने वाले राष्ट्र आज पशुओं से
कई गुना अधिक खूंखार हो गये हैं। इस का कारण
केवल मात्र आर्थिक है। इसी आर्थिक समस्या को न
सुलझा सकने के कारण ही आज एक तरफ तो सैनिक
तैय्यारी बड़े जोर-शोर से हो रही है और दूसरी तरफ
बड़े २ राजनीतिज्ञ शान्ति के नाम पर इन कौंसिलों में
कूटनीति का शतरंज खेल रहे हैं। जर्मनी, जापान
और इटली की युद्धवादी इंगलैण्ड को तब तक सुख की नींद
नहीं सोने देगी, जब तक कि उन्हें भी उपनिवेश नहीं मिल जाते।
इस संसार को इस अवस्था तक लाने का श्रेय भी फ्रांस
और इंगलैण्ड को है जो कि भूमण्डल का एक बड़ा भाग अपने
हाथों में दबाये हुए हैं। यही कारण है कि युद्धाग्नि अवश्य
प्रदीप्त होगी और इंगलैण्ड तथा फ्रांस उस से कदापि बच
न सकेंगे। उस युद्ध में हम भारतीयों का क्या भाग होगा
यह तो राष्ट्रीय महासभा ही निर्धारित करेगी। ऐ हिन्द
मेरे युद्ध के साथियो। कमर कस कर तैय्यार हो जाओ,
ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े।

का० [illegible]

निबन्ध निचय

नागरी लिपि सुधार

(कु० नरेन्द्र)

मनुष्य के व्यवहार के लिए जैसे भाषा की आवश्यकता है वैसे ही लिपि भी अत्यावश्यक है। लिपि के साथ ही मुद्रण के आविष्कार ने मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार को अत्यधिक सरल बना दिया है। लिपि के महत्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि उसके सीखने के लिए लिपि सरलतम हो तथा वैज्ञानिक पद्धति के पास तक पहुंची हुई हो। लिपि की सरलता और वैज्ञानिकता पर आवश्यक है कि उसे पढ़ने में, लिखने में तथा व्यवहार करने में सुगमता हो। उसके साधारण नियमों में बहुत अपवाद न हो। साथ ही जैसा लिखा जाय वैसा ही पढ़ा जाय। इसके अतिरिक्त उच्चारण-साम्य के अनुसार [illegible] में भी कुछ न कुछ साम्य होकर उसकी विज्ञानता को और [illegible] बढ़ा देता है।

इनसब दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए संसार भर की लिपियों में अधिक पूर्ण लिपि देवनागरी है। उसमें जो वर्ण लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। यह उसकी मुख्य विशेषता है। उसमें उर्दू या अंग्रेजी की तरह ए. बी. सी या अलिफ. बे. आदि पृथक् वर्णों की भाँति लिखना कुछ तथा पढ़ना कुछ नहीं पाया जाता। उसके N और An दोनों के उच्चारणों में भ्रान्ति साम्य नहीं हो सकता नागरी लिपि में जो न लिखो तथा पढ़ो। साथ ही इसमें एक ही वर्ण के भिन्न २ उच्चारण नहीं होता। But तथा Put के U के पृथक् उच्चारणों की तरह या अजमेर गए और आज भर गए की तरह एक वर्ण से भिन्न उकार के उच्चारण नहीं होते। इसके अतिरिक्त नागरी लिपि की वर्णमाला क्रमबद्ध है। नागरी वर्णमाला के ओष्ठ्य, कण्ठ्य या तालव्य वर्ण प्रायः एक ही स्थान पर पाये जाते हैं। स्वर और व्यञ्जन पृथक् क्रम से संगठित हैं। रोमन या उर्दू वर्णमाला की तरह स्वर व्यञ्जनों की अथवा उच्चारित स्थान भेद से क्रम की खिचड़ी नहीं की गई। नागरी लिपि के ये गुण इतने बढ़े चढ़े हैं कि प्रायः सब लोग इसे पूर्ण विकसित लिपि समझ लेते हैं और इसमें परिवर्तन की आवश्यकता भी नहीं समझते।

नागरी लिपि के इतना पूर्ण होते भी इसे इससे और ज्यादह पूर्ण बना सकते हैं। उसे और ज्यादह वैज्ञानिक बनाया जा सकता है। इस बात को समझने के लिए बहुत दिमाग लगाने की आवश्यकता नहीं। इसमें अभी कुछ

सुधार हो सकते हैं । यदि हम अपना दिमाग निष्पक्ष होकर
इसे सोचनेमे लगावें तो इसे स्पष्टतया समझ सकते है।
उदाहरण के तौर पर नागरीका रव अपूर्ण है । वह र तथा
व को खराब रूप बनाया गया है इसवास्ते पढ़नेमें दुविधा
रह जाती है। खाना तथा रवाना को आप एकसा ही पढ़ सकते हैं
जैसे ही खानगी तथा रवानगी को भी। इसीप्रकार 'कौआ' तथा
'और' इन शब्दों में विद्यमान औ उच्चारण मे भेद रखता है पर
लिखनेमें एक सा है । इनके द्वारा हम पर ऐसा बोध होता है
तो हम But तथा Put में उ उच्चारण निकालते है। ये तो मोटे
उदाहरण ही है। इनसे हम यह स्पष्ट समझ सकते हैं
कि नागरी लिपि मे और ज्यादह उन्नति की गुंजाइश है।

देवनागरी लिपि मे कई प्रकार के परिवर्तनों
की आवश्यकता होते हुए भी इसका बड़े जोरों से विरोध हो
रहा है। इसका कारण लोगों का पुरानी चीजों से प्रेम तथा
उनकी अदूरदर्शिता ही है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अपनी
पुरानी चीजों से बहुत ज्यादह प्रेम करता है। उसे उस चीजमें
हुए परिवर्तन अखरने लग जाते हैं। बड़े २ सुधारक कहलाने
वाले भी कुछ अंशोंमें अपनी प्रथाओं को या अपने व्यव-
हारों को पकड़े ही रहते है। यही बात लिपि के सम्बन्ध
में भी है। उसके जानने वालों में उसके नष्ट होनेकी संभावना
को देखकर लोग उसे विकास के या उन्नति के पथसे रोकने
में बाधा उपस्थित करते है। परन्तु थोड़ा सा विचार करने पर
इसे समझ लेने पर उसी बात [illegible] रखना दूरदर्शितापूर्ण

प्रतीत होता है।

यह समझ लेना चाहिए कि लिपि हमारी सुविधा के लिए है। इसलिए उसमें परिवर्तन अवश्य आते रहते हैं। लिपि की सुगमता के लिए जितने परिवर्तन किए जांय उतनी ही हमारी लेखनकला और मुद्रणकला सरल हो जावेंगी। इस विज्ञान के जमाने में और अनुभववाद या व्यवहारिकता को ध्यान रखने वालों के लिए पुरानी चीजों पर इतना आग्रह आवश्यक नहीं। व्यवहार और विज्ञान की दृष्टि में रखकर तो कितने बड़े २ परिवर्तन किए गए हैं। इसी तरह यदि लिपि के विकास तथा व्यवहार में पूर्णता आ सकती है तो उसे हमको अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

लिपि या वर्ण तो एक प्रकार के संकेत हैं। ये संकेत हमारे व्यवहार के लिए मूर्तस्वरूप हैं। किसी वर्ण के परिवर्तन की उपयोगिता को समझ में आते हुए भी उस पर अड़े रहना मूर्खता एवं मूर्तिपूजा है।

कई भाई देवनागरी लिपि को भी वेदों की तरह सृष्टि के प्रारम्भ से आई हुई समझते हैं। इस कारण उनको भ्रम हो जाता है कि संस्कृत आदि भाषाएं प्रारंभ से इसी में लिखी गई हैं। लिपि परिवर्तन से संस्कृत को भारी धक्का पहुंचेगा और वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य सम्पूर्णतया नष्ट हो जावेगा। इसी डर से वे इसमें परिवर्तन नहीं चाहते। पर उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है। लिपि-परिवर्तन से संस्कृत की किसी प्रकार भी क्षति होने की संभावना नहीं है। वर्ण तो संकेत हैं। किसी वर्ण के आकार बदल देने से [illegible] की सत्ता [illegible]

. . . .

होजाती। साथ ही यह भी जान लेना चाहिए कि संस्कृत सदा से नागरी लिपि में ही नहीं लिखी जारही है। हमारी प्राचीन लिपि तो ब्राह्मी लिपि थी। पहले संस्कृत उसीमें सुरक्षित थी। इसके कारण ही आजकल संस्कृत के शिलालेख या प्राचीन पुस्तक पढ़ना कठिन मालूम होता है। जैसे पहले संस्कृत ब्राह्मी में सुरक्षित थी उसके बाद नागरीमें, इसीतरह वह परिवर्तित नागरीमें भी रह सकती है। यदि नागरी अक्षरों में परिवर्तन नहीं हो सकते होते तो हमारे सामने नागरी के वर्णों का इतना सुन्दर रूप जिसे श्री गौरीशंकर भट्टजी ने अक्षरों की आकृति में परिवर्तन करके रक्खा है, नहीं आसकता था। थोड़े ही वर्षों में नागरी के नये वर्णों के मुद्रण में आनेसे यह परिवर्तित लिपि भी अभ्यस्त लिपि हो जावेगी।

नागरी में परिवर्तन की बात सुनते ही कई लोग नाक भौंह सिकोड़ने लगते हैं। और कहते हैं कि इसके परिवर्तन से क्या लाभ। इस परिवर्तन से तो हजारों लाखों को जो इस लिपि को जानते हैं, पढ़ने लिखने में असुविधा होगी। पर यह विचार परम्परा अहूरदर्शिता का परिणाम मात्र है। वे इसे अपने तक ही सोचते हैं। इसे गम्भीरता से देखने से उनका यह तर्क मिथ्या मालूम होता है।

इस समय हिन्दी भाषा व नागरी लिपि को राष्ट्र-भाषा व राष्ट्रलिपि का मान मिल रहा है। यदि हिन्दी भाषी व्यक्ति लिपि के सम्बन्ध में जरा सी दूरदर्शिता से काम लेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि इसके परिवर्तन से करोड़ों का लाभ हो सकता है।

इससे करोड़ो आदमियों को इसके सीखने मे बड़ी आसानी हो जायगी। विज्ञान से शुद्ध होने के कारण इसका एक नियम पता लग जानेसे उसमें सरलता आजायगी। उसके अपवाद दूर जायेंगे तो उसको सीखनेमे विशेष समय व्यतीत नहीं करना पड़ेगा। जैसे 'क' की बारहखड़ी क का, कि, की, सीख लेनेसे सम्पूर्ण वर्णों की बारहखड़ी को सीख जा सकते हैं उसीतरह अवर्ण की इसप्रकार बारहखड़ी चलानेसे अन्य स्वरो को सीखनेमे व्यतीत होता हुआ बहुत सा समय बच जायगा। 'ई' को 'अी' लिखा जाना उचित है या नहीं' इसे हम आगे स्पष्ट करेंगे। यहां तो यही स्पष्ट करना है कि अ की बारहखड़ी चलानेसे स्वरो को सीखनेमें बहुत कम समय लगेगा। इसीप्रकार अन्य अपवादों को जिन्हें आगे स्पष्ट किया जायगा हटानेसे सीखने के समय की बहुत बचत होजायगी।

आज देवनागरी लिपि राष्ट्रलिपि होरही है। अतः उसके परिवर्तन से करोड़ों को लाभ होगा। यही नहीं आगे आनेवाली सन्तति असंख्य संख्यामें इसे बड़ी आसानी से सीख सकेगी। यदि इससमय कुछ लोग व्यक्ति अपने को उदार बनादें तो इससे करोड़ों और अरबों मनुष्यों को लाभ पहुंचेगा। इससमय हमें परिवर्तित लिपि के कारण कुछ दिनों की दिक्कत होगी। परन्तु इससे आनेवाले असंख्य मनुष्यों को जितना इस लिपिके सीखनेमें कम समय लगा करेगा लाभ मात्र भी लगेगा। भावी सन्तति को ध्यानमें रखतेहुए हमारा इसका त्याग सबके लाभका विषय होगा। किसी युगके

राजहंस

बाग को जो अव्यवस्थित और निरुपयोगी हो रहा है उसको काट डालनेमें और उसके स्थानमें नया व्यवस्थित तथा उपयोगी बाग लगानेमें सम्भव है कि उसके लगाने वालों को ज्यादा फायदा न मालूम हो। परन्तु भावी सन्तति को इससे बहुत बड़ा लाभ अवश्यम्भावी है। इसीलिए पुराने बाग को काट कर नया बाग लगाया जाता है। इसी तरह यदि आधुनिक लिपि को ज्यादह वैज्ञानिक व उपयोगी बनाया जाय तो हमें कुछ दिक्कत अनुभव होने पर भी भावी सन्तति को इससे बहुत बड़ा लाभ पहुंचने वाला है। और सम्भव है कि नागरी लिपि के विशाल प्रचार में भी यह सहायक हो। इसे ध्यानमें रखते हुए हमें अपने विचारों को ज्यादह उदार बनाना चाहिए।

नागरी लिपि के कुछ वर्णों को परिवर्तित करते हुए हमें यह नहीं समझना चाहिए कि हम कोई अपनी चीज खो रहे हैं। नागरी तो सदा हमारी ही रहेगी उसका स्थान और कोई लिपि नहीं ले सकती। नागरी हमारी रहते हुए भी उसमें परिवर्तन करके हम उसे ज्यादह पूर्ण बना सकेंगे। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि रोमन लिपि इतनी असुविधाजनक होते हुए भी यूरोप के देश उसमें कोई परिवर्तन करना नहीं चाहते तो वे जो करें उनका ही हमें अनुकरण नहीं करना है। हमें तो अपनी सुविधा ही देखनी चाहिए जिस तरह हम रोमन लिपि को देख रहे हैं वैसे ही कोई नागरी लिपि को देख कर चाहे वह किसका कोई भी न हो। यदि हम उसमें और ज्यादा उन्नति लावेंगे तो उसमें हमारा ही गौरव

बढेगा। लिपियों में अनुकरण परिवर्तन अनुकरण की दृष्टि से नहीं किए जासकते। उसमें तो सरलता दृष्टि होनी चाहिए। तुर्की ने कमालपाशा ने सुविधा के अनुकूल रोमन लिपि को अपनाया। चीनी की लिपि इतनी कठिन है कि चीनी लोग भी उसको बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसीप्रकार संभव है कि किसीसमय अन्य सभी देशों को अपनी लिपियों की असुविधा के कारण उनको छोड़ कर नागरी को ही अपनाना पड़े। जब कमालपाशा जैसे राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति अपनी राष्ट्रीय लिपि को ही बदल सकते हैं तो हम अपनी लिपि में कुछ परिवर्तन करते हुए अपनी राष्ट्रीयता व अपनी पुरानी पद्धति के नाश होने की डर किस प्रकार हो सकता है।

लिपि-परिवर्तन करते हुए हमें इसके लिए भी तैयार होजाना चाहिए कि उसे वैज्ञानिकता तथा व्यवहारिकता की ओर में जितना ज्यादह लेजाया जा सकता है, ले जाना चाहिए। क्योंकि लिपि ऐसी चीज है जिसमें जल्दी २ परिवर्तन भी हानिकर सिद्ध हो सकता है। इसलिए जो ये कहते हैं कि थोड़े से परिवर्तन इससमय नागरी में कर दिये जांय यह उचित नहीं। यह ऐसा समय आगया है जब कि नागरी लिपि एक विस्तृत क्षेत्र की ओर जाना चाहती है। वह भारत के ३५ करोड़ लोगों की राष्ट्र लिपि बनने जारही है। इस विकास के समय उसे जितना पूर्ण बना दिया जाय उतना ही आवश्यक है। क्योंकि इस समय जो परिवर्तन होंगे वह फिर स्थिर बन सकेंगे।

आज भी नागरी लिपि में सबसे ज्यादह उर्दू लिपि हो चौरें। राष्ट्र के कर्णधार नागरी लिपि में

(क्रमशः देखें पृ.

वर्णों की 'पाई' में बड़ा भेद है। ग, ण, थ, न आदि वर्णों की पाई पूर्ण है। तथा यह पाई भी सुविधाजनक रखी है। यह पाई प्रत्येक वर्णों में स्थित अकार की द्योतक है। इसी पाई के कारण अंग्रेजी की तरह अक्षर को पूर्ण बनाने के लिए अलग से जैसे स्वरों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। यदि प्रत्येक वर्ण ऐसी पूर्ण पाई हो जाय तो भी सुविधा रहेगी। युक्ताक्षरों की अव्यवस्था का मूलकारण यह पाई की अव्यवस्था ही है। पूर्ण विराम युक्त वर्ण तो नहीं बनाए जाएंगे जिसमें अपवाद न हो। युक्ताक्षरों का साधारण नियम यह है कि उच्चारण के अनुसार आधे वर्ण प्रथम लिखे जाएं बाद में पूर्ण वर्ण। चाहे उस युक्ताक्षर में कितने ही व्यञ्जन समाविष्ट क्यों न हों। जैसे स्वर, अल्प, विन्ध्य आदि के युक्ताक्षर हैं। इन शब्दों में आये हुए वर्ण पाई वाले होने से उच्चारण के अनुसार एक के बाद एक लिखे गये हैं और यही उनकी पूर्णता है। यदि सब व्यञ्जनों को पूर्ण पाई वाला कर दिया जाय तो युक्ताक्षर को सीखने में कोई कठिनता नहीं आवेगी। क्योंकि युक्ताक्षरों का एक नियम हो जावेगा।

इस एक नियम के न होने से नये सीखने वालों को, बालक व अन्य व्यक्तियों को कठिनता प्रतीत होती है। प्रत्येक युक्ताक्षर को उसे याद रखना पड़ता है कि इन दोनों अक्षरों का मेल इस इस प्रकार होगा। जैसे किसी पाई रहित वर्ण को 'ह' के साथ जोड़ने पर भिन्न ही रूप से जोड़ना पड़ता है। इसे हम विद्वान, आह्वान, अन्वेषण, आह्लाद आदि अनेक शब्दों में देख सकते हैं। यह तो एक भाषा के साथ संयोग की चातुरी। इसीसे हमें ४, ५ वर्ष सीखने

* *

पड़ गए। ऐसे ही प्रत्येक वर्ण के साथ इन पाई रहित वर्णों को आसानी से मिला कर रूप बतलाने पड़ते हैं। अतः इन मुद्राक्षरों में उत्पन्न होने वाली कठिनाई को हमें दूर करना चाहिए। कई अक्षरों में पाई न होने से दोनों अक्षरों को ऊपर तथा नीचे जोड़ना पड़ता है। जैसे क्कु, कल्ह आदि। इस प्रकार लिखने से अक्षर नीचे की ओर ज्यादह बढ़ जाते हैं तथा सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं। मुद्रण में तथा पुस्तकों को छपाई पर बनाने के समय वर्ण का कटा हुआ होना विशेष अखरता है।

आधुनिक नागरी लिपि में मुद्राक्षरों में एकरूप प्रयोग भी निश्चित नहीं। उसके अनेक रूप प्रचलित किए हुए हैं। जैसे प्रेम, ह्रास, कर्म, ह्री, राष्ट्र आदि में। इन मुद्राक्षरों में पूर्ण अक्षर प्रायः ए हैं परन्तु उनको लिखने के ढंग ऐसे स्वतन्त्र किया हुआ है कि अन्य अक्षरों की प्रधानता दीखती है। कई मुद्राक्षरों में पहले पीछे का भेद भी नहीं मालूम पड़ता। जैसे चिह्न में। कई इसमें ह को पीछे समझते हैं तथा कई नहीं। इसका उच्चारण प्राय ~~चिन्ह~~ 'चिन्ह' होता है जबकि होना चाहिए चिह्न।

कई अक्षरों की पाई नहीं होती अतः उन्हें आधा बनाने के लिए, प्राय हलन्त कर देते हैं। जैसे क्कु, ठट्ठा, अनुष्ठान आदि। ट में पाई न होने से उसके आधे रूप को (ट्) का आकार दिया गया है। जैसे धर्म, खर्च, वर्तुनि आदि में। वर्तनि का आकार ह से मिलकर दूसरे ह का का धोखा दे सकते हैं।

इन दृष्टिकोण से हमें सब अक्षरों को पाई वाला बना देना चाहिए। उन्हें एक नियम में बाँध लेना चाहिए।

. . . .

जिससे कोई अपवाद भी न रह जाए। हमारी वर्तमान लिपि में ट, ठ ऐसे अक्षर हैं जो केवल आधी पाई या चोटी रखते हैं। जैसे ङ, छ, ट, ठ, ड, ड़, ढ़ तथा ह। [illegible] क फ, अपने पेट में पाई रखते हैं। र तथा उ के तो पाई नहीं है। ग श तथा ण अपनी पाई बिलकुल स्वतंत्र रखते हैं जैसे कि आकार की मात्रा (ा) हो। इन सब [illegible] दोषों को हटाने से नागरी लिपि पूर्णता की ओर बढ़ेगी और व्यवहार में भी आसान हो जाएगी।

इस नागरी लिपि में एक और बड़ा दोष मुद्रण की दृष्टि से है। इसके रहते नागरी अक्षरों को छापने में भी असुविधा रहती है। यदि इस दोष को दूर किया गया तो नागरी लिपि [illegible] को लाभ होगा। [illegible] रोमन लिपि या एक मंजिला गुजराती आदि अक्षरों में मुद्रण बड़ी सरलता से किया जा सकता है। उतनी सरलता नागरी के मुद्रण में नहीं है। इस दोष का मुख्य कारण नागरी लिपि का तीन मंजिला होना है। नागरी लिपि की एक पंक्ति तीन भागों में लिखी जाती है। साधारणतया उसके सारे व्यंजन मध्य मंजिल में मध्यभाग में बैठते हैं और यही उसकी मुख्य मंजिल है। इसके अतिरिक्त ऊपर एक मंजिल बनानी पड़ती है, जिसमें ई, ए, ऐ, ओ, औ की मात्राएं (ि, ी, े, ै, ो, ौ) तथा अनुस्वार, चन्द्रबिन्दु और रेफ आते हैं। नीचे की मंजिल में उकार, ऋकार आदि की मात्राएं (ु, ू, ृ, ्) तथा रान्द्र शब्द का

इससे भी राष्ट्रलिपि का स्थान लेना चाहते हैं। पर यह उनका विचार भ्रमपूर्ण है। उर्दू लिपि इतनी अपूर्ण, वैज्ञानिकता से शून्य तथा व्यवहार में बाधा पहुँचाने वाली है कि वह इस जमाने में थोड़े ही वर्षों में सूखे पत्ते की तरह स्वयं झड़कर गिर जाएगी। उर्दू लिपि को प्रोत्साहन देना प्रगति में बाधा उपस्थित करना है। उसे तो शीघ्र ही नष्ट हो जाना चाहिए।

इस प्रकार हमें विज्ञान, उपयोगितावाद व व्यावहारिकता की दृष्टि से लिपि-परिवर्तन की आवश्यकता को समझ लेने के अनन्तर यह देखना चाहिए कि नागरी लिपि में कौन २ से परिवर्तन होने आवश्यक हैं।

नागरी लिपि में सर्वप्रथम सुधार की आवश्यकता उसके स्वरों में है। हमारे स्वर लिपि की दृष्टि से बहुत कुछ अपूर्ण हैं। 'अ' के ही दो रूप 'अ' तथा 'अ' प्रचलित हैं। इसका एक ही रूप स्थिर कर देना आवश्यक है। स्वरों के अक्षरों में एक प्रकार कमी है। हमारे सारे स्वर बारहखड़ी में रखे जा सकते हैं। ऐसा करने से प्रत्येक स्वर के स्वरूप को पृथक् २ सीखने की आवश्यकता नहीं रहेगी। एक बालक केवल 'अ' को सीखकर अन्य स्वरों की मात्राओं के साथ सम्पूर्ण स्वरों को सीख सकता है। स्वरों का रूप अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ, के रूप में होने चाहिए।

इन परिवर्तित स्वरों में अि तथा अु के रूप को देखकर लोग चौंक पड़ेंगे तथा कहेंगे कि अ तथा इ कैसे मिल सकते हैं। इससे तो संधियों के नियमों में भेद होगा। अ तथा इ मिलकर तो ए हो जाना चाहिए। परन्तु अ तथा इ [illegible] का

रूप ए तो व्याकरण की चीज है। इससे लिखने में
कोई हानि नहीं होती। व्याकरण की दृष्टि से देखें तो वर्त-
मान नागरी लिपि के ओ का रूप भी गलत है। ओ में
अ तथा ओकार की मात्रा (ो) मिलाए गए हैं। पर अ तथा
ओ मिलने पर तो औ हो जाता है। परन्तु ओ के स्वरूप में
किसी को आपत्ति नजर नहीं आती। और वास्तव में लिपि की
दृष्टि से कोई आपत्ति होनी भी नहीं चाहिए। इसीप्रकार अि
तथा अु का भी सम्बन्ध है। देव+इन्द्र तथा भानु+उदयति
मिलकर व्याकरण द्वारा रूप नहीं लिपि में भी देवेन्द्र तथा
भानूदयति बन सकता है।

वर्तमान नागरी लिपि के की या कु में भी
भली बात है। यह पहली क अक्षर के साथ दूसरा नागरी में
कि अक्षर के बिना। तथा उसी में भी इकार या उकार की
मात्राएं 'ि' तथा ु जोड़ दी जाती हैं। वैसे तो क के साथ इ
मिलकर 'कि' रूप बन जाना चाहिए। इसीप्रकार इ तथा उ के
परिवर्तित रूप अि तथा अु में भी इसे कोई आपत्ति नहीं
होनी चाहिए।

व्याकरण की दृष्टि से भी देखें तो व्याकरण
'ए' को अ तथा इ का रूप बताता है। पर अ तथा इ को
मिलाकर बोलने से (ऐ) का रूप बनता है। जो कि वास्तव में
व्याकरण अ तथा ए का मिश्रित रूप बताता है।
हमें व्याकरण की दृष्टि से नहीं पर सोचना चाहिए जहां पर
संधि करनी होती है। इससे तो हम किसी भी संकेत को मान
कर [illegible] सकते हैं। इसलिए ऐ इ तथा उ के बदले
व्याकरण दृष्टि से अशुद्ध नहीं मानने चाहिए। जैसे ओकार में

अ तथा ओकार की मात्रा (ो) का संयोग हो सकता है वैसे ही शिकार में अ तथा इकार की मात्रा (ि) का संयोग हो सकता है और वैसा ही करना चाहिए।

ए तथा ऐ के वर्तमान स्वरूप में भी दोष हैं इसमें एकार की मात्रा 'े' स्वीकृत की गई है तथा ऐकार की 'ै'। जैसे के, कै या खे, खै में। परन्तु वर्तमान लिपि में एकार तथा ऐकार को बदलते हुए उसके मूल में ही अपवाद कर देते हैं। एकार भी इस तरह लिखना चाहिए जिसमें उसकी एक मात्रा आवे तथा ऐकार में दो मात्राएँ 'ै' हों। नये परिवर्तित रूप में ए तथा ऐ से यह दोष दूर हो सकता है।

स्वरों में एक दोष और रह गया है वह ह्रस्व इकार की मात्रा (ि) का है। किसी भी व्यञ्जन के साथ स्वर की मात्रा आने पर उसका स्थान व्यञ्जन के बाद में आता है। जैसे की (क् + ई), कू (क् + ऊ)। परन्तु ह्रस्व इकार की मात्रा (ि) के साथ पक्षपात किया जाता है। हम उस मात्रा को व्यञ्जन के आगे रख देते हैं। जैसे कि, खि आदि में। नियम के अनुसार तो उसे भी व्यञ्जन के बाद में ही लिखना चाहिए जैसे 'के' या 'को' लिखे जाते हैं। ऐसा करने में ह्रस्व इकार की मात्रा (ि) का दीर्घ इकार की मात्रा (ी) के साथ मिल जाने का खतरा है। परन्तु उनमें से किसी एक मात्रा में थोड़े से परिवर्तन करने से इन दोनों में भेद किया जा सकता है, ऐसा करने पर उसमें एकरूपता आवेगी। उस मात्रा का 'परिवर्तित रूप' होना चाहिए इसका विरोध तो अन्ध पुजारी के सोचने वाले रूढ़िवादी ही कर सकते हैं। अपने पड़ोसियों का सुधार करें तो बाधा नहीं पड़ सकता।

नागरी लिपि में एक दोष यह भासता है कि उसमें कई उच्चारण छूट गए हैं अतः उनको व्यक्त करने के लिए नए संकेत या वर्णों की आवश्यकता है। ऐसा कहा जा सकता है कि प्रायः ऐसे उच्चारित होने वाले उच्चारण जिनका नागरी लिपि में कोई वर्ण या संकेत नहीं है, बाहर से आगत हैं। अतः इन उच्चारणों को नागरी वर्णों के उच्चारणों में परिवर्तित कर देना चाहिए। यह बात सत्य है तथा होना भी ऐसा ही चाहिए परन्तु फिर भी इसमें कमी रह जाती है। कई भिन्न उच्चारण हिन्दी भाषा ने स्वयं विकसित किए हैं। उनके लिए भिन्न वर्णों का होना आवश्यक है। जैसे हौआ, कौआ तथा औरत के उच्चारणों में भेद है। इसी तरह 'ऐनक' तथा 'मैल' के उच्चारण में उच्चारण में भी भेद है। इनके उच्चारणों में भेद होते हुए भी वर्तमान नागरी में इन्हें एकसा ही लिखा जाता है। इनके लिखने में अवश्य भेद होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त ड़ तथा ढ़ के उच्चारण में भी अब भेद आ गया है। पड़ना, लड़का आदि शब्दों में मध्य ड़ उच्चारण का उच्चारण ड के रूप में नहीं होता। अतः इस परिवर्तित स्वरूप को भी नागरी वर्णमाला में स्थान देना आवश्यक है।

स्वरों पर विचार करने के बाद अब हमें व्यंजनों पर विचार करना चाहिए। व्यंजनों में भी अनेक सुधार आवश्यक हैं। वर्तमान नागरी का 'ख' का रूप किसी प्रकार भी स्वीकरणीय नहीं है। यह तो र तथा व का मेल है। जैसे कि ऊपर बताया है कि खाना, रवाना, खानगी तथा रवानगी पढ़ने में इसके कारण कठिनाई होती है।

व्यंजनों का दूसरा बड़ा दोष यह है कि

साधन को पूर्ण करना चाहिए। नागरी के मुद्रण में भी ऐसा लाभ बना
चाहिए जो कि वर्तमान नागरी के अनुकूल हो इसलिए नागरी को
बदलना नहीं चाहिए। यह युक्ति ऊपर से तो सत्य प्रतीत होती है,
पर इसमें एक भ्रम रह जाता है। लिपि का उद्देश्य होता है भाव
को संकेत में रखकर लोगों में प्रचार करना। यह जितना सरल हो जाय
उतना ही अच्छा है। पहले "मनुष्य" शब्द को बनाने से पूर्व मनुष्य की
आकृति बनाकर संकेत किया करते थे जिसमें कठिनता भी आती थी
और समय तथा स्थान दोनों ही लगते थे। परन्तु अब तो 'मनुष्य' शब्द
के 3½ अक्षरों से ही बहुत ही थोड़े समय में सरलता से चल जाता है।
इस प्रकार के संकेत और ज्यादा सरल तथा शीघ्रता वाले हों तो
यह तो संकेतों की या लिपि की पूर्णता होगी। यदि नागरी लिपि को
इस मुद्रण पद्धति के अनुसार बदल दिया जाय तो यह लिपि के
प्रयोजन को ही ज्यादा पुष्ट करने वाला होगा। इससे तो कठिनता की
समय की तथा स्थान की बचत हो सकेगी। जब यह प्रयोजन
पूर्ण होगा तो लिपि को मुद्रण के लिए क्यों न बदला जाय। मुद्रण
ने तो इस लिपि के प्रयोजन को लाखों गुना सरल और पूर्ण बना
दिया है। इस मुद्रण से एक ही तरह की लाखों पुस्तकें प्रकाशित
होती हैं और इससे सारा मनुष्य समाज लाभ उठा सकता है। मुद्रण
से पूर्व तो लेखक द्वारा अपने विचारों के प्रचार करने का क्षेत्र -
बहुत संकुचित था। मुद्रण के इतने बड़े लाभों को देखकर यदि
लिपि में परिवर्तन किया जाय और वह भी उसके उद्देश्य
को पूर्ण करने वाला हो, तो लिपि में परिवर्तन क्यों न किया जाय।

बच्चन की कविता

—श्री सत्यभूषण "योगी"

रोने वाला ही समझेगा
कुछ मर्म हमारी मस्ती का
—मधुबाला

बच्चन अनुभूति का कवि है। उसके शब्द शब्द में उसका हृदय प्रतिबिंबित है। उसने अपने हृदय को नग्न रूप में दुनिया के सामने रखने का प्रयत्न किया है। इस क्रूर जग में उसे रोना पड़ा और वह रोना गायन के रूप में प्रकट हुआ—

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूं
—मधुबाला

मैं रोया इसको तुम कहते हो गाना।
मैं फूट पड़ा, तुम कहते छन्द बनाना।
—मधुबाला

वह वेदनाओं को तरानों के रूप में अपने हृदय से निकाल फेंकना चाहता है

कह तो सकते हैं कह कर ही
कुछ दिल हल्का कर लेते हैं।—मधुबाला

इस अपूर्ण संसार में जहां वेदनाओं का दिनरात नग्न नृत्य होता है जहां प्रेमियों के संघर्ष एवं संयोग वियोग के दुखमय अभिनय दिन रात व्यथित करते रहते हैं - तड़पाते रहते हैं - कसकाते रहते हैं - जहां हमारी लगभग सभी इच्छाएं अपूर्ण रह जाती हैं कवि सहसा कह उठता है

'है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूं ! - मधुबाला

इस स्वप्नों के संसार को इस कल्पना के सुखद जगत को नियति क्रूर और निर्दय नियति किसी तरह भी छीन नहीं सकता । यह 'मधुमय-संसार' संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति से भी अगम्य है । इस मधुमय संसार में बच्चन मधुविक्रेता या मधुशाला का मालिक बन कर बैठता है और तृषितों को अपने हृदय की रक्तरूपी हाला पिलाता है। पीने वाले मस्ती से झूमते हैं - पर "किसे ज्ञात है कि यह दूसरों को मतवाला कर देने वाला स्वयं कितने अवसादों का पुंज है! किसे मालूम

आज कल

है कि यह दूसरों को शीतलता प्रदान करने वाला स्वयं कितनी भीषण ज्वाला में दग्ध हुआ करता है।

बच्चन को मदिरा की प्यास है और तीव्र प्यास है - पर उसे जिस मदिरा की प्यास है, उसके अभाव में तृष्णा उसी के रक्त को पी रही है, उसकी त्वचा के छिद्र छिद्र से अपने सूक्ष्म अधरों को लगा कर उसका शोषण कर रही है, उसे निःशेष कर रही है। उसका क्रंदन गान बन कर विश्व में गूंज रहा है। क्रंदन करने की उसे आवश्यकता है। क्रंदन न करे तो क्षणभर भी जी नहीं सकता। जीवन उसके लिए आनन्द नहीं, कर्तव्य है। यदि जीवन कर्तव्य न होता तो वह मौन ग्रहण कर लेता और वह मौन उसे शीघ्र ही चिर-मौन की शरण में भेज देता।

दुखिया जीवन के एकांत पथ पर स्वच्छंदता से क्रंदन भी नहीं करने पाता। संसार बार-बार उसके मार्ग में आकर उससे पूछता है, 'क्यों जी, तुम पीते भी हो मदिरा?' उसे वह क्या उत्तर दे।

● — 'मधुबाला' के प्रलाप से

* *

समझ सकने की शक्ति हो तो समझ, उसके पास वह मदिरा है, जो उसे ही पीती है।

संसार उससे पूछता है, दांत निकाल कर, सिर तिरछा करके, 'ह' ह' तुमने कितनी पी है?' मूढ़ को प्रश्न करना भी नहीं आता। नादान, उससे यह पूछ कि तुझे कितनी प्यास है, कितनी तृष्णा है? तेरे उर में कितनी ज्वाला है, कितनी जलन है?

उदर की ही क्षुधा को क्षुधा समझने वाला संसार गली गली कहता फिरता है, 'भूखे भजन न होहिं गोपाला।' झूठ। भूखे रह कर ही भजन होता है। प्यासा ही गान कर सकता है। तृप्ति तृप्ति मौन है। तृष्णा के ही मुख में जिव्हा, कंठ में स्वर और उर में श्वास है। मरु के कण कण में सजल गान के स्रोत हैं। यदि इस बात को तू समझ सकता है तो तू उसे भी समझ सकेगा।

मधु के गीतों के गायक पर नि-
र्दय संसार दोष लगाता है तो वह

आज कल

दुख से कहता है —

औरों के हित मेरी हस्ती,
औरों के हित मेरी मस्ती,
मैं पीती सिंचित करने को
इन प्यासे प्यालों की बस्ती,
आनंद उठाते ये अपयश
की भागी बनती मैं, साकी।

— मधुबाला

वह उर का आसव बांट रहा है —

उन्मत्त बनाना खेल नहीं,
मधु से भी बुझती प्यास कहीं।
उर तापों से पिघला मेरा,
यह नहीं सुरा की धार बही।
उर के आसव से ही होती
है शांति हृदय की ज्वाला की।

— मधुबाला

तुमने समझा मधुपान किया ?
मैंने निज रक्त प्रदान किया।
उर क्रन्दन करता था मेरा,
पर मुख से मैंने गान किया।
मैंने पीड़ा को रूप दिया
जग समझा मैंने कविता की।

— 'मधुबाला'

जग ने उसे पथभ्रष्ट कहा और दी उसको लानत —
उस तपस्वी का उत्तर सुनिए —
देख भीगे होंठ मेरे
और कुछ संदेह मत कर,
रक्त मेरे ही हृदय का
है लगा मेरे अधर में !

— 'मधुकलश'

पार तम के दीख पड़ता
एक दीपक झिलमिलाता,
जा रहा उस ओर हूं मैं
मत्त मधुमय गीत गाता,
इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूं,

आज कल

जानता हूँ, क्यों जगत फिर
उँगलियाँ मुझपर उठाता —
मौन रह कर इस लहर के
साथ संगी बह रहे हैं,
एक मेरी ही उमंगे
हो उठी हैं व्यक्त स्वर में।
है कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में! 'मधुकलश'

कृत्रिम छल युक्त व्यवहारों वाली दुनिया उस का उपहास करती है - उस पर लांछन लगाती है बदनाम करती है - तो वह कहता है —

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा। - 'मधुकलश'

वह छिपाना नहीं जानता, ढोंग करना नहीं जानता
वह चकित होकर पूछता है —

नग्न तृण, तरु, पल्लव, खग-वृंद,
नग्न है श्यामल-तन आकाश
नग्न रवि, शशि, तारक, नीहार,
नग्न बादल, विद्युत, वातास,
जलधि के आंगन में अविराम
ऊर्मियां नर्तन करतीं नग्न,
सरोवर, नद, निर्झर, गिरि, शृंग
नग्न रह कर ही रहते मग्न!
भली मानवता ही क्यों आज
रही अपने पर परदा डाल? — 'मधुबाला'

~~लोकाचार~~ उसे यह देख कर और भी अधिक आश्चर्य होता है कि—

आज कहलाता है अश्लील
हृदय का अनियंत्रित उद्गार,
विकृत जीवन को ही जग आज
समझ बैठा है लोकाचार।

— 'मधुबाला'

आज कल

इस छलरहित सरलहृदय कवि के मुक्त गीतों को सुन कर दंभी दुनिया ने दोष लगाया कि उसकी कविता में वासना का जबर्दस्त पुट रहता है— आह, निर्दयता इस विश्व की— कवि हृदय रो पड़ा और वह उठा—

'थी तृषा जब शीतजल की
खा लिए अंगार मैंने,
चीथड़ों से उस दिवस था
कर लिया शृंगार मैंने,
राजसी पट पहनने की
जब हुई इच्छा प्रबल थी,
चाह संचय में लुटाया
था भरा भंडार मैंने,
वासना जब तीव्रतम थी
बन गया था संयमी मैं,
है रही मेरी क्षुधा ही
सर्वदा आहार मेरा।
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

सृष्टि के प्रारंभ में मैंने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्यवाले दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम संध्या के अरुण दृग चूम कर मैंने सुलाए,
तारिका-कलि से सुसज्जित नव निशा के बाल चूमे,
वायु के रसमय अधर पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा।
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा

विश्वाभिराम दोउ जिनको मोह लेता विश्वभर को,
मानवों को, सुर-असुर को, वृद्ध ब्रह्मा, विष्णु, हर को,
भंग कर देता तपस्या सिद्ध, ऋषि, मुनि सत्तमों की,
वे सुमन के बाण मैंने ही दिए थे पंचशर को,
शक्ति रख कुछ पास अपने ही दिया यह दान मैंने,
जीत पाएगा इन्हीं से आज क्या मन मार मेरा!
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।

'मधुकलश'

आज कल

आदर्शवादी एवं उपयोगितावादी भाइयों का कहना
है कि - इस समय भूखे नंगे भारत को कला की
जरूरत नहीं है उसे जरूरत है रोटी और कपड़ों की
तो फिर क्यों निरर्थक कलावाद से वायुमण्डल
को विषैला बनाया जा रहा है।

ठीक है, भारत आज गरीब है उसकी
समृद्धि का प्रयत्न होना चाहिए - पर इसका
मतलब यह तो नहीं है कि वेदना के तराने
बन्द हो जाने चाहिए जब किसी का हृदय
क्रूर नियति की कठोर यंत्रणा से तड़प रहा हो
तो कैसे संभव है कि उसके मुख से क्षीण
कराह भी न निकले।

वस्तुतः दो संसार हैं - आन्तरिक और
बाह्य - बाह्य संसार में दीन दुखियों का
क्रन्दन है कौन कहता है कि उसकी उपेक्षा
की जाए - उन दुखियों के दुःखों के गीत
गाने वाले होने चाहिए और जरूर होने चाहिए-

- राष्ट्रीय गीतों के गाने वाले भी जरूर होने चाहिए
पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि
आन्तरिक वेदनाओं के गीत गाने वाले नहीं होने
चाहिए - और हमारे बच्चन तो बाह्य
संसार से आँख नहीं मींचता वह तो कहता
है -

जड़ जगत में वास कर भी
जड़ नहीं व्यवहार कवि का,
भावनाओं से विनिर्मित
और ही संसार कवि का,

बूंद के उच्छ्वास को भी
अनसुनी करता नहीं वह,

'मधुकलश'

तथा —

एक मधुबन-बीच विचरित दूसरा पग स्थित मरुस्थल,
एक में जीवन-सुधा-रस, दूसरे कर में हलाहल,
सुन रहा नन्दन-परी का गान, क्रंदन भिक्षुणी का
देखता हूं एक सपन ही गोद में मैं सोती . .

युद्ध विरोधी कण-समूहों से तुम निर्मित मेरा — 'मधुकलश'

एवं कल्पना संसार में नन्दन परी की गान सुनते हुए भी उस वास्तविक संसार में भिक्षुओं के क्रंदन को नहीं भूलता।

कोरे आदर्शवादियों के प्रति कवि का कथन है—

शंख की ध्वनि यदि जरूरी, झाँझ की झनकार भी है,
काठ की माला जरूरी यदि, कुसुम का हार भी है,
शुष्क ज्ञानी चाहिए तो चाहिए रस-सिद्ध कवि भी,
सत्य आवश्यक अगर है स्वप्न की दरकार भी है, 'मधुकलश'

बच्चन मस्ती के तराने गाता फिरता है - जिसको पढ़ कर जग मस्त है - वह साभिमान कहता है —

जिसको सुन कर जग झूम झुके लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूं।

अब सवाल यह हो सकता है कि

आज कल

कवि ने मस्ती के लिए हाला को ही क्यों प्रतीक चुना ।

इसका अर्थ यह है कि तो फिर वह क्या प्रतीक चुनता, - अफीम - भांग - गांजा - चरस आखिर क्या? सोमशब्द अच्छा है - पर आजकल सोम शब्द को सुन कर किसी मादकता की अनुभूति नहीं होती — हां हाला - मधु - मदिरा - इन शब्दों में मस्ती की गजब की अनुभूति है - माना भौतिक अंगूरों से निकली हुई शराब स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है - पर इस तथ्य से भी कौन इनकार कर सकता है कि हाला जैसी मस्त कर देने वाली और कोई चीज नहीं - फिर जिस कवि ने मस्ती के लिए कोई प्रतीक लेना हो वह हाला के सिवा ले ही क्या सकता है!

इसमें हालावाद ठीक है। युक्तियुक्त है - प्रशंस्य है/

आज कल

बच्चन निष्क्रिय कवि नहीं हैं, वह केवल मस्त होना ही नहीं जानता - संसार के संघर्ष में आँसू पीना ही नहीं जानता - पर वह छाती अड़ा कर दुनिया को आह्वान करना भी जानता है - अथाह जलराशि से भरे और उत्तुङ्ग तरङ्गों से भीषण अंबुधि को देख कर कवि कहता है —

पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाए मानता मैं,
पार भी पहुँचे बहुत-से —
बात यह भी जानता मैं,
किंतु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे,
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं।
डूबता मैं, किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा,

हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन!
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण! - 'मधुकलश'

बच्चन एक, उच्च और दृढ़ व्यक्तित्व का आदमी है- यह उसके साहित्य से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है- कर्ता अपनी कृति में प्रतिबिंबित होता है। - वह कवि साभिमान कहता है -

नाव, नाविक, फेर ले जा,
है नहीं कुछ काम इसका,
आज लहरों से उलझने को
फड़कती हैं भुजाएँ, - 'मधुकलश'

नभ को विघ्न धूलि से भरा देख कवि कहता है

आज है अस्थिर गगन
अस्थिर सलिल तल हो रहा है,
किन्तु अस्थिर हो न माँझी
धैर्य अपना खो रहा है,

आज कल

झेलने को इस बड़े

तूफान के झोंके-झकोरे

मानवी संपूर्ण साहस

वक्ष बीच सँजो रहा है।

अवनि-अंबर की तराजू

सामने रख दी गई है

क्यों न तोलूँ आज अपनी

शक्ति इस पर गर्व से धर

धूलि मय नभ क्या इसी से

बाँध दूँ मैं नाव तट पर? - 'मधुकलश'

उसे दृढ़ निश्चय और विश्वास है कि विश्व उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उस को अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है

बाहु-बल से ही तरंगों

की अनी से होड़ लेता

कूल-हीन समुद्र में

निःशंक नौका छोड़ देता,

बाँधता पल में हृदय का

सेतु अंबर से अवनि तक,

भार को भी अति प्रबल
विपरीत उसके मोड़ देता ;
नद न झरना, सर न सरिता,
कूप-वापी मे न गिनती
बूंद स्याही की भला क्या
रोक लेगी राह मेरी ! – 'मधुकलश'

बच्चन आदर्शवादी मनुष्य और आदर्शवादी कवि है – संसार की तृष्णाओं के विषय में उनकि–

शांत सकी हो अब तक, साकी !
पीकर किस उर की ज्वाला ?
'और, और' की रटन लगाता
जाता हर पीने वाला । -मधुशाला

—

चाहे जितनी मैं दूं हाला,
चाहे जितना तू पी प्याला,
चाहे जितना बन मतवाला,
सुन, भेद बताती हूं अंतिम —
यह शांत नहीं होगी ज्वाला । 'मधुशाला'

आज कल

हाय ! वासना मद का पान !

करके मानव बन मतवाला,

विषम-कीच से कर काला,

लगा उपेक्षित मातृ-दुग्ध का करने अब अपमान !!

बच्चन का असाधारण कवित्व

उछलते-लहराते समुद्र को देख कर कवि कहता है —

विश्व की सम्पूर्ण पीड़ा

सम्मिलित हो रो रही है,

शुष्क पृथ्वी आँसुओं से

पाँव अपने धो रही है, 'मधुकलश'

मैं हँसा जितना कि खुद पर,

कौन हँस मुझ पर सकेगा ?

और जितना रो चुका हूँ,

रो नहीं फिर सकेगा।

मैं स्वयं करता रहा हूं

जिस तरह प्रतिरोध अपना,

मानवों मे कौन मेरा,

उस तरह से कर सकेगा ?

हाथ ले बुझती मशालें

जग चला मुझको जलाने,

जल उठी छूकर मुझे ने

धन्य अंतर्दाह मरेरी।

विश्व में उपहास जिसका

वह कभी थी आह मेरी 'मधुकलश'

जरा मस्त गर्वीले कवि की मस्ती तो देखिए—

भावना के पुष्प अपनी

सूत्र-वाणी मे पिरोकर

धर दिए मैंने खुशी से

विश्व के विस्तीर्ण पथ पर,

कौन है सिर पर चढ़ाता ?

कौन ठुकराता पगों से ?

कौन है करता उपेक्षा ? ——

मुड़ कभी देखा न पलभर

थी बड़ी नाज़ुक धरोहर,

था बड़ा दायित्व मुझ पर,

आज कल

अब नहीं चिंता उन्हें
झुलसा न दें संताप मेरे।
गीत कह उसको न दुनिया,
यह दुखों की भाप मेरे! 'मधुकलश'

'आदर्श प्रेम' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

प्यार किसी को करना लेकिन —
कह कर उसे बताना क्या?

ले लेना सुगंध सुमनों की,
तोड़ उन्हें मुरझाना क्या?
प्रेम-हार पहनाना, लेकिन —
प्रेम-पाश फैलाना क्या?

त्याग-अंक में पले प्रेम-शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या?
देकर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या!

अपने इस लेख में मैंने 'मधुशाला' का स्पर्शमात्र किया है क्योंकि उसके लिए एक अलग एक लेख निबन्ध की आवश्यकता है।

मधुशाला के प्रलाप के अंतिम हिस्से में कवि कहता है — .

समझ सकेगा उसे कोई? आजतक संसार ने एक भी कवि को नहीं समझा। उसकी कविता वह भले ही समझने का दावा करे। -----

संसार बहुत प्रसन्न हुआ तो कहता है, उसे काव्य-प्रतिभा का वरदान है। यहां भी वह भूल करता है कवित्व दैव का सबसे बड़ा दंड है। न जाने किस महान अपराध के लिए मानव को वह दिया जाता है। वह दूसरे के संसार को ले नहीं सकता, अपने संसार को पा नहीं सकता। विधाता जिसको सब प्रकार वंचित करना चाहता है, उसे ही यह दंड देता है।

संसार में फिर भी इस अपराधी की इतनी पूछ क्यों है?

आज कल

बच्चन ने निराशा के गीत गाए और इसीलिए आशा के गीत भी उ गाए हैं तथा मस्ती के झूमा देने वाले तराने भी गुंजाए हैं - वह दुनिया को समर में आह्वान करता है - और दिनरात घोर संग्राम करता है - उसका कहना है —

राग के पीछे छिपा
चीत्कार कह देगा किसी दिन
हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खड़े जीवन समर में

अत्यन्त निराशा अवस्था में वह कह उठता है

बद्ध विश्व अपूर्ण में मैं
पुण्य मुझमें, पाप मुझमें
हर बुराई हर भलाई
की मिलेगी छाप मुझमें
पात्र अपयश का अकेला
यदि प्रकार अन्याय जग का

साथ दोनों के गुणों की

भी बनी है माप मुझमें

मैं जगत के वास्ते

अभिशाप हूं वरदान भी हूं

दब गया अभिशाप लेकिन

छिप गया वरदान मेरा

पूछता जग है निराशा

से भरा क्यों गान मेरा

एवं बच्चन मानव हृदय की अनुभूति का कवि है - उसकी भाषा में ओज, माधुर्य, गठन और प्रवाह है- भावों में ~~सच्ची~~ सच्ची अनुभूति है - उसका व्यक्तित्व इतना दृढ़ है कि बड़े बड़े पर्वतों को भी एक प्रहार से धूलिसात कर सकता है।

'तेरा हार' में सद्यः प्रसूत शिशु का नवल गुलाबी हास है। मधुशाला में यौवन के उभार की जलती हुई - तड़पाने वाली मस्ती है । मधुबाला में मादक नृत्य है

आज कल

और मधुकलश में अत्यन्त दृढ अध्यात्म अनुप्राणित करने वाली इस संसार से ऊपर उठा देने वाली - स्वर्ग या काल्पनिक लोक में उड़ा की ले जाने वाली -

साहित्य में बड़ा विवाद रहता है कि साहित्य कैसा हो - कोई आदर्शवाद का प्रबल युक्तियों से पोषण करता है तो कोई 'कला कला के लिए हैं' इस सिद्धान्त को ठीक मानता हुआ यथार्थवाद की पुष्टि करता है।

आदर्शवाद के पोषक साहित्य के उपासक बन कर नहीं आते अपितु 'नैतिकता के पुरोहित' बन कर आते हैं। साहित्यिक समाज कोई धर्मोपदेशक सभा नहीं है कि धर्मोपदेश दिया करे। साहित्य का काम तो हर एक मानसिक, प्राकृतिक इत्यादि घटनाओं का चित्रण करना है।

इस का मतलब यह नहीं कि वासनोत्तेजक एवं बदबूदार वस्तु का सृजन किया जाए - और कोई भी सच्चा साहित्यिक ऐसे निन्दनीय साहित्य का सृजन करेगा भी नहीं - पर, साथ ही सत्य यह भी है कि साहित्यिक धर्मोपदेशक नहीं - । दुनिया में मनुष्य का हर एक कर्म मानव की सेवा के लिए होना चाहिए । मानव की सेवा ही जगत्पिता प्रभु की सच्ची सेवा है - पर, मानव की सेवा केवल गरीब किसानों के गीत गाने से और 'मजदूर जिन्दा रहें हमारा' इत्यादि नारे लगाने से नहीं होती । दुःखों में सान्त्वना - और अनुप्राणन देनेवाला साहित्यिक भी मानव की सेवा उतनी ही करता है जितनी कि कोई धर्मोपदेशक।

' साहित्य का सृजन जनता के लिए होना चाहिए ' ऐसी पुकार बड़े जोर से सुनने में आती है। ऐसा कहनेवाले लोग बहुत सोच से

आज कल

कहते हैं कि आजकल हालावाद, प्यालावाद
एवं रानीवाद की कोई जरूरत नहीं है। इन्होंने
बहुत तबाही मचा रखी है। जिसको देखो, एक
प्रिया या रानी को लिए बैठा है।

यह ठीक है कि साहित्य जनता के लिए
होना चाहिए - पर, हालावाद इत्यादि जनता
के लिए निरुपयोगी हैं - ऐसा कौन कह सकता
है। सामान्य ग्रामीण जनता का हृदय ठूंठ
एवं रेगिस्तान नहीं है - उसमें प्रेम संयोग, वियोग
और वेदना के तरानों का मूल्य होता है। मानव-
हृदय सब जगह एक है - अनादिकाल से ऐसा है
और अनन्त काल तक ऐसा रहेगा - जरा बुद्ध
ग्रामीणों (जनता) के गीत सुनिए - जिन गीतों
को वे हर्ष के अवसरों पर, खेत जोतते हुए और

पति के समीप बैठा होने के कारण कोई रमणी लज्जा वश खुल कर नहीं गा सकती- धीरे धीरे गुन गुना रही है—

" गीतु कि भरमार छ।
दीदी-भुल्यू कि लग्यार छ।
मेरा तौं कु बडो जाग छ।
स्वामी कि मैंराली लाज छ।

- ' आज गीतों की भरमार है। मेरी सबकी सब छोटी-बडी बहनें नृत्य के लिए पंक्तियाँ बाँधे जुटी हैं; पर मैं हूँ कि अपने स्वामी के समीप होने के कारण लज्जा से बँधी हूँ।'

घन घोर प्रेम के पहचानने का तरीका सुनिए—

" झंगोरा कि धाण।
जैकी माया घनघोर;
रई स्यलनाणी पाणी।"

- 'झंगोरा (विशेषप्रकार का अनाज) का ढेर। जिसमें घनघोर प्रेम होगा, उसकी आँखों से पहचान लिया जायगा।'

फिर स्थायी प्रेम कैसा होता है

आज कल

' कुणी जाली माणी।
रगड़ नो सूकि जाणा,
रई स्यलबाणी पाणी।'

— बाँस की खपाचों से बने अनाज नापने की टोकरी बुनती है। बरसाती पानी सूख जायगा, पर झरनों का पानी चिरकाल तक रहेगा।'

प्रेमी प्रेमिका की प्रेम प्रतियोगिता देखिये —

' गंगा जि को भौंर।
तराज न तौलि देखी,
के ... माया बौत।'

— ' गंगा जी का भँवर। आओ, तराजू से तोल कर देखलें कि हम में से किसका प्रेम अधिक है।'

प्रेम का स्वाद देखिये —

पंजाब की ऊँटनी।
तेरी मेरी माया सुआ,
चूलू की चटणी।'

— ' पंजाब की ऊँटनी। हे सखी, तेरा मेरा प्रेम चूलू की चटनी का-सा खट्टमिट्ठा है।' अर्थात् — इसमें सुख-दुःख दोनों ही हैं।

प्रेमी अपनी प्रेमिका से पूछ रहा है —

'चाँदी को बटण।
तोय कौन सिखायो सुग्या।
माया को जतन।"

— 'चाँदी के बटन! हे सखी, प्रेम के ये हाव भाव तुम्हें किसने सिखाये हैं?'

परदेश जाते पति से प्रेमिका कहती है -

" फूलूँ भरे केश।
आँख्यों की माया दीदूं ;
न जा परदेस।"

- 'फूलों से भरे हुए केश। मैं तुम्हें आँखों की प्रेम दूँगी, प्यारे परदेश मत जाओ।'

इस प्रकार आप जनता के गीतों को देख जाइये, उनका साहित्य इन प्रेम गीतों से भरा पड़ा है।

हल्लाबाद, ब्याल्लावाद, रानीवाद - ये भी सब प्रेम गीत हैं - इनका मधुमय मंगलगान मुबारक हो।

आज कल

संस्कृत निष्ठ हिन्दी ही हिन्दी है

(लेखक - ब्र० कपिलदेव जी)

आज भारत की भाषाओं के एकीकरण का प्रश्न साहित्यिक समाज में अधिक महत्व का विषय होता है। प्रत्येक देश की उन्नति और अवनति का कारण मूलतः साहित्य है। जब किसी राष्ट्र या जाति का समूलोन्मूलन किया जाता है तब सर्वप्रथम उसके साहित्य पर कुठाराघात किया जाता है। संसार का इतिहास इस बात की गवाही देता है कि जिस देश या जाति का इतिहास उन्नत होता है वह जाति या देश संसार में अपना अस्तित्व रखता है, परन्तु जिसका साहित्य लुप्त या लुप्तप्राय, दूसरे शब्दों में अधोगति को प्राप्त होने लगता है वह देश या जाति संसार के मानचित्र पर नामशेष रह जाती है। राष्ट्र जातियां हुईं परन्तु आज उनका साहित्य उपलब्ध नहीं, अतः उनका नाम मात्र भी आज संसार के साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी कारण आज समस्त भारतीय विद्वन्मण्डल इसके लिए भरसक प्रयत्नशील है कि समस्त देश की एक भाषा हो जो कि राष्ट्रभाषा मानी जाय। 'अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग' या 'तीन कनौजी तेरह चूल्हे' की कहावत के अनुसार प्रत्येक प्रान्त की भिन्न भिन्न भाषा होना राष्ट्रियता की दृष्टि से उचित नहीं, इसके लिए

अन्य दो प्रान्तीय तथा उपप्रान्तीय विज्ञ इसी निर्णय पर पहुँच
सके हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिए। यदि इस पर वि-
चार-विनिमय किया जाता है तो ज्ञात होता है कि हिन्दी का
हिन्दुस्तान के साथ निकटतम सम्बन्ध है, जिस जाति के
नाम से यह भारत-वसुन्धरा सम्बोधित की जाती है,
जो जाति इस मण्डित मही को अलंकृत करती आई है उस
के साहित्य पर दृष्टिपात करने से यह बात सुस्पष्ट हो जाती
है। सर्वप्रथम भारतीय साहित्य का बीज वेद है इसलिए
आदि-भाषा वेद-भाषा रही तदनन्तर देव भाषा उसके
स्थान पर राष्ट्रभाषा हुई, यह संस्कृत भाषा सामान्यतः
बोलचाल की भाषा के रूप में व्यवहार में आई, जब क्रमशः
संस्कृतज्ञों का ह्रास होने लगा तब कुछ अपभ्रंश तथा सं-
स्कृत सम्मिश्रित भाषा प्राकृत के रूप में व्यवहार में आई।
इसके कई भेद हुए महाराष्ट्री, शूरसेनी, मागधी आदि, ये सब
भाषाएं संस्कृत प्राय अपभ्रंशात्मक रूप में राष्ट्रभाषा रहीं।
इन्हीं भाषाओं से क्रमशः ह्रास होते २ महाराष्ट्री से मराठी,
शूरसेनी से हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की कई अन्य भाषा-
एं प्रचलित हुईं; जो कि प्रान्तभेद, स्थानभेद के कारण भिन्न
भिन्न प्रान्तों की भाषाएं हुईं, परन्तु इनमें प्राधान्य सर्वदा
हिन्दी भाषा का ही रहा है। साहित्य इस बात की साक्षी दे
रहा है, हिन्दी के प्रारम्भिक जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आज कल

से लेकर अन्य साहित्यिक मर्मज्ञों ने तथा कवि पुंगवों ने जिस शैली का, जिस रीति का तथा जिस सूक्ति का अनुसरण किया है, वह सर्वदा संस्कृत-प्रधान ही रही है। इस भाषा के प्रारम्भिक जीवन में पद्यात्मक साहित्य का ही प्राधान्य रहा है, जो भी पुस्तकें आज उपलब्ध होती हैं वह प्राय पद्यात्मक ही है, यद्यपि इसका झुकाव कुछ समय व्रज भाषा की ओर होता है। महाकवि सूर, तुलसी, बिहारी, पद्माकर आदि की कविताएँ ब्रजभाषा प्रधान हैं, परन्तु उस समय भी इनमें किसी अन्य भाषान्तर शब्दों का प्रयोग उपलब्ध नहीं होता; संस्कृत-सरणि का सर्वदा ही अनुसरण किया है। यह साहित्य यवन-साम्राज्य के मध्यकाल तक भारतीय साहित्य रहा, इसके पश्चात् मिश्रित (खिचड़ी) भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। यह फौजी भाषा समझी जाती थी, कुछ भाषा पद्धति से अनभिज्ञ लोग ही इसका प्रयोग करते थे। धीरे २ यवनकाल में इसका सम्बन्ध अरबी और फारसी भाषा से कर दिया गया। तबसे इस मिश्रित भाषा का झुकाव अरबी और फारसी की ओर हुआ, परन्तु यह मिश्रित भाषा कभी राष्ट्र-भाषा के रूप में व्यवहृत नहीं हुई, इसलिए आज भी राष्ट्रभाषा का मनोनीत पद इसे प्राप्त हो सका। इसी प्रकार अन्य भाषाओं पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वह संस्कृत प्राय ही हैं; बंगला, मराठी, गुजराती आदि का साहित्य

८०,९० प्रतिशत संस्कृत ही है। बंगाल, महाराष्ट्र गुजरात आदि के निवासियों के लिए अब यदि कोई भाषा अनायास या स्वल्प आयास-साध्य हो सकती है तो वह संस्कृत निष्ठ हिन्दी ही हो सकती है जो उनके मन मन्दिरों में अत्यन्त-सत्कार के साथ स्थान प्राप्त कर सकती है। बिहार और यू० पी० में तो सर्वदा संस्कृत-प्राय हिन्दी ही व्यवहार में आती रही है। इसीने इनके बुद्धि-वैभव और मन मन्दिरों को भूषित किया है। इसीप्रकार भारतीय भाषा के एकीकरण में जब हिन्दी को ही यह मनोनीत-पद अर्पित किया जा रहा है, तब उसके प्रारम्भिक जीवन और यौवन पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती है। जब इसका प्रारम्भिक जीवन संस्कृत निष्ठ रहा है, यौवन संस्कृत निष्ठ रहा है, साक्षात्संस्कृत से सुसंबद्ध रहा है तब अन्य भाषान्तरों का इसके साथ समन्वय कैसे किया जा सकता है। इसको हम खिचड़ी (मिश्रित) भाषा बनाने का यत्न नहीं करना चाहिए। इस प्रश्न के उठानेकी आवश्यकता किसी प्रकार भी युक्त प्रतीत नहीं होती। भारतीय प्रान्तीय भाषाओं का अवलोकन करने से संस्कृत ही संस्कृत सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। किसी भी प्रान्तीय भाषा में आंग्ल आदि भाषान्तरों का समावेश प्रायः स्पष्टतः समुपलब्ध नहीं होता। इस प्रकार आंग्लभाषा भी मिश्रितभाषा इसमें कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रखती।

आज कल

तत्सम और तद्भव शब्द अन्य भाषान्तरों में उपलब्ध होते हैं, उनका आदिकारण भी विवेचनात्मक विचार करने से संस्कृत ही ज्ञात होता है। इस प्रकार सर्वथा संस्कृत भाषा हिन्दी के साथ समन्वित रही है। प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का अवलोकन करने से, जन समुदाय में व्यवहृत भाषा के अनुसार तथा क्रमागत सम्बन्ध के कारण हिन्दी का समन्वय संस्कृत के साथ होता है। आधुनिक प्रगतिशील साहित्य की ओर भी दृष्टिपात करने से यही ज्ञात होता है कि भाषान्तरों से इसका समन्वय न केवल इसके अध पतन का कारण होगा अपितु हानिकारक होने का भी कारण हो सकता है। हिन्दी का प्राकृतिक सौन्दर्य भाषान्तरों के साथ सम्बद्ध होने पर कृत्रिमता का रूप धारण कर लेगा। इसको विवादास्पद या विचारणीय विषय भी रहने देना सर्वथा हानि कारक है। यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि किसी प्रकार आंग्लभाषा या मिश्रित भाषा को इसके साथ सम्बद्ध किया जाय तो प्रथम उसके परिणाम का निरीक्षण करना भी अपेक्षित होगा। यद्यपि कुछ भाषान्तरों के शब्द इतने व्यवहृत हो गए हैं कि उनके स्थान पर शुद्ध संस्कृत शब्दान्तर का प्रयोग प्रयत्न-साध्य है परन्तु सामान्यतः इसका परिणाम हानिकारक ही होगा। इसके लिए गुड़िया मन्त्रिमण्डल द्वारा शिक्षा में जो एक प्रस्ताव प्रस्तुत

किया गया था कि बिहार प्रान्त मे सर्वत्र मिश्रित (उर्दू) भाषा ही राजकीय कार्यों में व्यवहृत हो उसका परिणाम विदित ही है। वह न केवल हिन्दू जाति के लिए हानिकारक हुई थी अपितु यवनो के लिए भी हानिकारक ही रही। सामान्यत: जनता मिश्रित भाषा या आंग्लभाषा नही समझ सकती। किन्तु संस्कृत के शब्द प्रत्येक भाषा मे इतने प्रचलित होते है कि किसी भी प्रान्तीयको तथा साधारण जनता को किसी प्रकार का कष्ट अनुभव नही होगा। अत: जहाँ पर राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को दिया जा रहा वहाँ उसका संस्कृत निष्ठ होना अत्यावश्यक है, जिस भाव को कहने मे संस्कृत शब्द समर्थ है उसके लिए भाषान्तर के शब्दो का प्रयोग अनावश्यक तथा अनौचित्यपूर्ण है। जो भाषान्तरो के शब्द प्रयोग मे अत्यधिक आते है उनके स्थान पर संस्कृत शब्दान्तरो का प्रयोग अनिवार्य है। आशा है विद्वद्वृन्द इसके लिए प्रयत्नशील होगा।

आज कल

राष्ट्र भाषा हिन्दी है

लेखक – ब्र. महावीरसिंह जी

जागृत भारत के सामने जहाँ अनेकों समस्यायें और उलझनें आकर उत्कर्ष के अन्दर रोड़ा अटकाती हैं, यदि उन पर विचार धारा को प्रवाहित किया जाय तो हमारे सामने सबसे प्रमुख समस्या शिक्षा की उपस्थित होती है। आँखें खोलकर देखने से पता चलता है कि देश की वर्तमान परिस्थितियों के विशेषज्ञ इसी पहेली के हल करने में लगे हुये हैं। आज भारतवर्ष एक राष्ट्र बनने जा रहा है. राष्ट्रवाद की इतनी चर्चा होते हुये भी भारत में राष्ट्र भाषा का प्रश्न अछूता सा बना हुआ है। शिक्षा के लिए किसी न किसी भाषा का आश्रय अनिवार्य है. संसार में सैकड़ों भाषायें हैं. एक देश की केवल एक ही पृथक् भाषा नहीं हुआ करती किन्तु एक देश में बहुत सी भाषायें प्रचलित होती हैं। परन्तु जो देश अपनी राष्ट्र भाषा बनाना चाहते हैं वह उनमें से एक को राष्ट्र भाषा चुन लेते हैं। राष्ट्र भाषा को चुने बिना राष्ट्र की इमारत बन नहीं सकती। यदि बन भी जाय तो दो चार तूफान ही उसे नेस्तनाबूत कर देंगे। इमारत चकनाचूर हो जायगी। क्योंकि किसी देश के नौजवान। जब तक अपनी जातीय भाषा में शिक्षा नहीं पाते. तब तक उनमें राष्ट्रीय भाव उत्पन्न हो ही नहीं सकते। इस पर भी स्वराज्य की चर्चा चलाना क्या उपहासास्पद विषय नहीं है। जातीय गौरव जातीय भाषा में ही निहित है। यदि

उस गौरव गरिमा को ले अन्य भाषा के द्वारा हमें सिखाने का
प्रयत्न किया जाय तो वह सफलता की आशा-दुराशा मात्र है।
हमारे वर्तमान नायक भारत को एक स्वतन्त्र और उन्नत
राष्ट्र बनाने की धुन में लगे हुए हैं पर वह भी इस प्रश्न पर अधिक
विचार करना पसन्द नहीं करते क्यों कि इसके अन्दर अनेकों
प्रान्तिक अड़चनें तथा हिन्दू और मुसलमानों का मतभेद होने की
संभावना है। कुछ भी हो जब तक यह समस्या सुलझायी न जावे
गी भारत की उन्नति का स्वप्न देखना केवल अदूरदर्शिता ही होगी
बिना राष्ट्र भाषा हिन्दी के भारत की उन्नति कभी भी संभव
नहीं है। भला सोचिए तो सही राष्ट्रीयता के लिए विचार
विनिमय कितना आवश्यक है. किन्तु भाषा भेद इसके अन्दर
विघ्न रूप हो जाता है। यदि भाषा एक होगी तो हम अपनी चित्त
की चिनगारी को और स्थानों पर भी प्रज्वलित कर सकते हैं।
परन्तु भारतवर्ष की अवस्था तो बड़ी ही विचित्र है। सन्
१९०१ की जन संख्या की गणना में यहाँ १४० भाषा भाषी
विद्यमान थे। समय पलटता चला गया। दिन और रात हंसते
और रोते हुए बिचारे भारत की दयनीय अवस्था देखते
हुए प्रयाण करते गये परन्तु १९११ में एक अद्भुत चित्र-
पट सामने आया। रिपोर्ट के आधार पर उस समय भारत

आज कल

की भाषायें २२-वीं। इतनी विषम परिस्थितियों के होते हुए भी यदि
राष्ट्र भाषा हिन्दी न बनाई गई जिसके जानने वालों की संख्या ३
के लगभग है और समझने वालों की और भी अधिक है तो
परिस्थिति अत्यन्त विषम हो जायेगी। इसलिये यदि हिन्दी को
ही राष्ट्र भाषा बना लिया जाय तो क्या हानि है. और इसके लिए
केवल यही नहीं कि जिस स्थान पर इसका अधिक प्रचार है
वहीं लोग इससे सहमत है। ऐसी बात नहीं है किन्तु मद्रास
बंगाल आदि प्रान्तों के लोग भी इसे सहर्ष स्वीकार करने को
तैयार हैं और इसके लिए उन्होंने आगे कदम भी बढ़ा दिये हैं।
विदेशी किन्हीं प्रयोगों को छोड़कर वर्तमान शिक्षा में हमारे
अनुरूप नहीं। इंगलिश को ही देखिये जिसके लिये वर्तमान
शासक मंडल सिर तोड़ परिश्रम कर रहे हैं, कहाँ तक
उपयोगी सिद्ध हुई और इससे हमारे अधिकांश नवयुवकों का
जीवन बना या बिगड़ा यह तो कोई कहने की बात नहीं है। प्रजा के
पुजारी साधारण लोग भारत रत्न-गांधी इससे अच्छी तरह परि-
होंगे चित। शासक सत्ता का प्रबल प्रयत्न रहने पर भी आज
भारतवर्ष के अन्दर प्रतिशत एक इंगलिश के ज्ञान वाला
उपलब्ध होता है उनमें भी पूर्ण ज्ञान वालों की संख्या इनी
गिनी ही है। हमारे शासक मंडली को तो केवल क्लर्क चाहिए

रूप से चलाने के लिए पुर्जे चाहिएं, वह तो तादाद से ज़्यादा पैदा हो जाते हैं. फिर उन्हें क्या चिन्ता कोई मरे या जिए. अपनी पाकेटें भरती रहें बस इन्हें संतोष हो जाता है। कितना समय और कितनी कठिनाइयाँ अन्य देशीय भाषाओं के सीखने में पड़ती हैं। समय और परिश्रम आवश्यकता से अधिक व्यय होते हैं। इसलिए भारत के लिए हिन्दी भाषा ही उपयोगी है। हमारे बहुत से भाई शायद यह कहें कि जब हम को राष्ट्र भाषा बनानी ही है तो क्यों न हम किसी ऐसी भाषा को चुनें जो हमारी वर्तमान सारी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हो. और जिसका प्रचार संसार में अधिक हो. यह ठीक वैसी ही बात है जैसे कोई मूर्ख किसान कहने लगे कि मेरा खेत छोटा और कम उपजाऊ है सो मैं अपना बीज दूसरे के बड़े और उपजाऊ खेत में बोदूँ। हम समझते हैं कि मूर्ख से मूर्ख किसान भी ऐसा कार्य करने को तय्यार नहीं हो सकता। पर आज हमारे बहुत से शिक्षाभिमानी विदेशी भाषा के ही आधार पर अपना राष्ट्रीय मंदिर निर्माण करना चाहते हैं। यह कोरी भूल है। इस पर संभव है लोग कहने लगें कि हम प्रथम उस भाषा पर अपना पूरा आधिपत्य क्यों न करलें, पीछे उस पर राष्ट्रीय मंदिर निर्माण करें। इसका सीधा सा उत्तर यह है कि किसान जमींदार के खेत पर अपना स्वत्व नहीं कर सकता है। किराये पर उसे जोत और बो सकता है। ठीक

आज कल

इस के अनुरूप हम विदेशीय भाषा में चाहे कितने ही पटु क्यों न हो जायें. पर उस पर हमारा स्वत्व नहीं के ही बराबर होगा, उस पर स्वाभाविक स्वत्व उन्हीं लोगों का है जिन की वह मातृ-भाषा है। इन सम्पूर्ण बातों के होते हुए भी हम विदेशीय भाषा को अपने देश की राष्ट्र भाषा बनाने का उद्योग करें तो सिवाय इस के कि हमें अपनी भाषा से भी हाथ धोने पड़ें और कुछ भी हाथ न आवेगा। तो फिर प्रश्न यह पैदा होता है कि हम क्या करें. किस ओर क़दम बढ़ावें, किस भाषा का बिगुल बजायें। इस के लिए हम यही कहेंगे कि प्रत्येक देश की उन्नति और अवनति का उसकी मातृभाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है, या यों कहिये कि वहाँ विद्या, कला, कौशल, साहित्य धर्म और समाज का उत्थान पतन तद्तद् देशीय मातृभाषा पर ही अवलम्बित रहता है. किसी भी मातृभाषा विहीन समाज या देश की प्रगति संसार क्षेत्र में नहीं हो सकती। जर्मनी को ही लीजिए-एक समय ऐसा था जब कि वहाँ मातृ भाषा का प्रयोग ही परिहास जनक था पर ज्यों ही उसने अपनी मातृभाषा को प्रधानता दी त्यों ही वह संसार की रंगस्थली में हिमालय के स्थान पर चमकने लगा। विज्ञान में बाज़ी मार ले गया, शिल्प में सिद्ध हस्त हो गया. और संसार

को स्वाधीन विचारों का पाठ पढ़ाने लगा। आयर्लैंड के
इतिहास के पन्ने भी इसी रंग में रंगे हुए हैं। और जापान
का इतिहास तो डंके की चोट से बतला रहा है कि वह मातृ-
भाषा के कारण ही प्रतिष्ठित हुआ है। इसके विपरीत विद्व-
वर ला० हरदयाल जी एम. ए. के शब्दों में हमारे भारतवासि-
यों की अवस्था को देखिये। आज जब हिन्दुओं की मातृभाषा
हिन्दी उनसे अपनी पैत्रिक पदवी मांगती है तो वे हिन्दी शकु-
न्तला के दुष्यन्त बन कर कहते हैं. हम तुझे नहीं जानते.
हम ने तुझे कभी देखा भी नहीं रह रह कर बाल गंगाधर तिलक
के शब्द मुझे याद आ रहे हैं 'बिना मातृभाषा को अपनाये किसी
भी जाति में जातीयता का भाव या जातीय स्वाभिमान प्र-
काश नहीं पा सकता और उसमें अपने पूर्वजों का अभिमान
नहीं आ सकता है। इसी मातृभाषा की महत्ता को बताते हुए
"श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन कहते हैं' चाहे हमारा अंग अंग काट दी-
जिए, चाहे हमारी राजनैतिक स्वतन्त्रता छीन लीजिये, चाहे हमें
सूली पर चढ़ा दीजिए, किन्तु जब तक हम अपनी मातृभाषा
पर कायम हैं अपनी भाषा के महत्व को समझे हुए हैं. तब तक
मेरा ख्याल है ख्याल ही नहीं मेरा दृढ़ विश्वास है. कि हम
उस समय तक जिन्दा हैं. किन्तु ज्यों ही आपने अपनी

आज कल

भाषा का मोह छोड़ा निश्चय समझिये उस दिन आप में प्राण नहीं
रहे आप मुर्दा हो गये और आपका अस्तित्व लोप हो गया।
इसलिए मातृभाषा हृदय की भाषा है, हृदय से उसका साक्षात
सम्बन्ध है। मातृभाषा के लिए हृदय समुज्वल और पवित्र
आसन है। मातृभाषा हृदय की ज्योति है. उसके प्रकाश में सभी
प्रकार के ज्ञान प्रकाशित होते हैं। हृदय की ज्योति रूप मातृभाषा
की किरणें समस्त ज्ञान को आसानी से खींच लेती हैं उसी प्र-
कार कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें भौतिक पदार्थों के
रसों को खींच लेती है। हिन्दी भाषा का स्वागत करते हुए
हम परमेश्वर से यही चाहते हैं कि हमारी मातृभाषा हिन्दी
भारत की राष्ट्रभाषा बने. जिससे संसार में हम एक
दिन फिर चमक उठे॥

आज कल

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रस्ताव

प्रथम प्रस्ताव — यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन श्री काशीप्रसाद जायसवाल, पण्डित चन्द्रपति जी, श्री जयशंकर प्रसाद, श्री रामदास गौड, आचार्य काशीनाथ जी, श्री ब्रजमोहन शर्मा, श्री गोपाल रामचन्द्र ताम्बे की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करता है। और उनके परिवारों से समवेदना प्रकट करता हुआ परमेश्वर से उनकी सद्गति के लिये प्रार्थना करता है।

द्वितीय प्रस्ताव — सम्मेलन उन देशी राज्यों तथा प्रान्तीय सरकारों को बधाई देता है जिन्होंने शिक्षा तथा शासकीय विभागों में हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन किया है।

तृतीय प्रस्ताव — इस सम्मेलन की सम्मति में हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा वह हिन्दी हो सकती है जो सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दों का ही अधिकतर प्रयोग करे। तथा जिसमें न कठिन संस्कृत हो न ही केवल फारसी अरबी की भरमार हो। इस प्रकार की भाषा का शब्द कोश और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का कार्य सर्वप्रथम किया जाना चाहिये।

चतुर्थ प्रस्ताव — इस सम्मेलन की सम्मति में राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ाने के लिये निम्न कार्य क्रम को प्रोत्साहित किया जाय।

1. सब हिन्दीप्रेमी पतों में हिन्दी का ही अधिकतम प्रयोग करें।
2. प्रान्तीय सरकारें प्रत्येक शिक्षा मन्दिर के साथ चलते फिरते पुस्तकालय स्थापित करें जिनमें थोड़ी सी पर चुनी हुई, सरल उपयोगी पुस्तकें रक्खी जाँय।
3. व्यापारी वर्ग अपने खातों, हुण्डियों और बैंकों को हिन्दी भाषा में ही लिखें।
4. प्रतिवर्ष हिन्दीसप्ताह और प्रसिद्ध हिन्दी कवियों की जयन्तियां मनाई जाया करें।
5. प्रकाशक वर्ग तथा विद्वान लोग सभी विषयों की पुस्तिकाएं तैयार करें। तथा इसके लिये अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पथ प्रदर्शक है।
6. हिन्दीभाषा भाषी प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारें हिन्दी की परीक्षाओं को भी प्रोत्साहन दें। विश्वविद्यालयों तथा सभी शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा को ही बनायें।

आज कल

* *

अध्यक्ष प्रस्ताव : - यह सम्मेलन अनुभव करता है कि गुरुकुलों को राष्ट्रभाषा के प्रचार में अग्रगामी रहना चाहिए।

इस दृष्टि से निम्न कार्यक्रम को अपनाना चाहिए।

१- प्रतिवर्ष हिन्दी-साहित्य सम्मेलन हो।

२- पुस्तकालय में हिन्दी पुस्तकें तथा पत्रिकाएं अधिक संख्या में मंगवाई जावें।

३- कार्यालय पत्र व्यवहार में हिन्दी का ही व्यवहार करें।

४- पाठ्यक्रम में हिन्दी भाषा की पढ़ाई यथा सम्भव अधिक रक्खी जाय।

५- अध्यापक तथा स्नातक हिन्दी भाषा में अपने अपने विषयों के उच्च-साहित्य का निर्माण करें।

६- विद्यार्थी हिन्दी में लेख लिखें तथा उन्हें अखिल भारतीय पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजें।

७- गुरुकुलों में गल्प, कविता, निबन्ध, प्रहसन, गद्यगीत उपन्यास, आदि साहित्य तैयार करते हुए विद्यार्थी यह ध्यान रक्खें कि वह राष्ट्रनिर्माणकारी तथा प्रगति का अनुसरण करने वाला हिन्दी साहित्य हो।

८- गुरुकुलों में सब उत्सवों में आने वाले पारितोषिक

शब्दों को यथासम्भव शीघ्र हिन्दी में परिवर्तित किया जाय।

८- प्रत्येक मुसलमान हिन्दी भाषा पढ़ने में समर्थ हो।

नवम प्रस्ताव — यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि पारिभाषिक शब्दों की रचना संस्कृत शब्दों के आधार पर की जानी चाहिये।

५ — सभापति तथा प्रधानसभापति।

६ — मन्त्री द्वारा निमन्त्रित अन्य प्रतिनिधि

८ — विषय समिति में संशोधन सभापति की अनुमति से ही पेश हो-सकेंगे।

९ — विषय समिति तथा सम्मेलन में व्यवस्था सम्बन्धी विप्रति-पत्तियों तथा अन्य विवादों का निर्णय सभापति करेंगे।

१० — सम्मेलन में प्रस्तुत प्रस्तावों पर संशोधन विषय समिति के द्वारा ही पेश हो सकेंगे। विशेष अवस्थाओं में, सभापति की विशेष अनुमति से नियत समय तक सम्मेलन मंत्री के पास आये संशो-धनों पर भी विचार हो सकेगा।

"सूचनाएं"

1- प्रस्तावक समिति के सदस्य —

१- नरेन्द्रनाथ (संयोजक)

२- नरदेव

3- क्षेमपाल

४- नवरत्न

५- आदित्यरञ्जन

२- प्रस्तावक समिति के संयोजक के पास १६ ता. शाम 3 बजे तक प्रस्ताव पहुंच जाने चाहिए।

3- स्वागताध्यक्ष श्री हरिदत्त जी उपस्थित होंगे।

४- सम्मेलन के जो सदस्य निबन्ध पढ़ना चाहें उन्हें १६ ता. तक सम्मेलन मंत्री के पास अपने निबन्ध पहुंचा देने चाहिए।

५- विषयसमिति के लिये निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपनी सूचना १८ ता. शाम ५ बजे तक सम्मेलन-मंत्री के पास भेजनी चाहिए।

६- निबन्ध साधारणतया ७ मिनट से बड़ा न हो।

७- प्रस्तावक समिति १६ ता. को 3 से ५ तक होगी।

८- विषयसमिति- १६ ता. को रात्रि ७ से १० तक होगी।

९- सम्मेलन के सभापति श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक,

मा- श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ होंगे।

१० - निबन्धों के विषय - हिन्दी साहित्य का विकास, रहस्यवाद, हिन्दी का कोई प्रसिद्ध कवि, हिन्दी समाचार पत्र, हिन्दी की वर्तमान साहित्यिक प्रगति, हिन्दी का कोई प्रसिद्ध कवि, हिन्दी भाषा तथा लिपि समस्या, राष्ट्रभाषा हिन्दी, प्रान्तीय भाषाओं तथा विदेशीय भाषाओं का स्थान, हिन्दी प्रचार, हिन्दी में उच्च कोटि का साहित्य, हिन्दी अन्वेषण कार्य, ब्रजभाषा और खड़ी बोली, हिन्दी में नाट्य साहित्य, हिन्दी और हिन्दुस्तानी, हिन्दी के महाकाव्य, देवनागरी लिपि के सुधार की योजना, जिससे कि वह इतर प्रान्तीय लिपियों के साथ अधिक सम्पर्क में आ सकें।

१६ - हिन्दी भाषी प्रान्तों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो और उसके लिये आवश्यक पुस्तकों की समस्या।

१७ - हिन्दी में समालोचना साहित्य का अभाव।

१८ हिन्दी साहित्य के प्रति अंगरेजी शिक्षित जनता की उदासीनता।

१९ - क्या उर्दू केवल मुसलमानों की भाषा है?

२० - क्या उर्दू को केवल मुसलमानों ने ही बनाया है।

"निर्वाचन नियम"

१- निर्वाचन 3 दिसम्बर को रात्रि के ठीक 6½ बजे शुरू होगा।

२- श्री उपाध्याय देवदत्त जी बेदालंकार निर्वाचन अधिकारी का कार्य करेंगे। (Returning officer)

3- निर्वाचित मन्त्री, मन्त्री कार्यकारिणी सभा होंगे।

४- महाविद्यालय के सब विद्यार्थी, अध्यापक, उपाध्याय और स्नातक तथा गुरुकुल के वालिग कर्मचारी निर्वाचन में मतदाता माने जाएंगे। महाविद्यालय के विद्यार्थी ही उम्मीदवार बन सकेंगे।

५ निर्वाचन में प्रत्येक मतदाता (Voter) को एकमत (Vote) देने का अधिकार होगा।

६ प्रस्तावक और अनुमोदक उम्मीदवारों (Candidates) की स्वीकृति लेकर उम्मीदवारी पत्र और दलों का घोषणापत्र २ता० की दोपहर 12 बजे तक निर्वाचन मन्त्री के पास पहुंचा देना चाहिये।

७ निर्वाचन सम्बन्धी प्रचारकार्य में शिष्टता का ध्यान रखना आवश्यक होगा। प्रचार के लिये पत्रिका, कार्टून, भाषण, पोस्टर व नारालिपि आदि साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

८ निर्वाचन सम्बन्धी नियमभङ्ग की विप्रतिपत्तियों (Election petition) की सूचना निर्वाचन मन्त्री के पास 3 दिसम्बर प्रात: ८ बजे तक पहुंच जानी चाहिए।

९ निर्वाचन न्यायालय का कार्य श्री आचार्य जी के निरीक्षण में होगा।

१० — ११वीं - १२वीं का निर्वाचन स्थान कमरा नम्बर १३ और १३वीं १४वीं का कमरा नम्बर १२ तथा स्नातकों, उपाध्यायों और अध्यापकों तथा (Polling Station) कालिज कर्मचारियों का निर्वाचन स्थान कमरा नम्बर ११ होगा। जहाँ मत-स्थान व्यवस्थापक (Polling Officer) नियुक्त किये जायेंगे। जिनकी आज्ञा प्रत्येक को माननी होगी।

११ — उम्मीदवार पत्रों की जांच के समय तथा निर्वाचन स्थानों पर मत देने के समय तथा मत गणना के समय उम्मीदवार या उसकी स्वीकृति से कोई प्रतिनिधि उपस्थित हो सकता है।

१२ — निर्वाचन का अधिकारी निर्वाचन मंत्री होगा।

१३ — निर्वाचन का परिणाम निर्वाचन के बाद ही सभा भवन पर निर्वाचन अधिकारी [illegible] प्रगट होगें।

परिशेष — १. नियम ५ में उम्मीदवार पत्रों की जांच २½ बजे तारीख २ दिसम्बर तदनुसार १२ मार्गशीर्ष को होगी। तब प्रस्तावकों और अनुमोदकों को अधिकार होगा कि अपने उम्मीदवारों की स्वीकृति लेकर वे २ से ४ बजे सायकाल तक उनके नाम वापिस ले सकें।

२ = मत देते हुए उम्मीदवारी पत्र पर प्रदर्शित नाम पर ही म० देना चाहिए। और उम्मीदवारी पत्र में वही नाम आना चाहिए जो मतदाताओं की सूची में प्रकाशित हो।

सम्पादकीय

[illegible] है। [illegible] ... [illegible] फलों [illegible] नहीं मिलता [illegible] [illegible] [illegible]

क्रीडा — यह मास क्रीडा की दृष्टि से सफल कहा जा सकता है। २० दिसम्बर से शुरू होने वाले श्रद्धानन्द टूर्नामैण्ट की तैयारी क्रीडा विभाग खूब जोरशोर से कर रहा है। रोज सायङ्काल ४½ बजे दोनों विभाग के खिलाडी क्रीडाक्षेत्र में पहुंच जाते है। खूब जोश से खेलते है।

अभी कुछ दिन पहिले गुरुकुल के स्नातक श्री प गणपति जी वेदालङ्कार की कृपा से तीन दल के खिलाडियों को विशेष परिश्रम करने के कारण विशेषरूप से दूध दिलवाने का प्रबन्ध हुआ था। परन्तु खिलाडियों की रुचि उधर न थी अतः यह विशेषदूध बन्द कर देना पड़ा है, इसके लिए क्रीडामन्त्री और दलों के

सुविधाओं को विशेष ध्यान ~~दिया जाना~~ देना चाहिये।

टूर्नामेन्ट की तैयारी अच्छी होने इसलिये पिछले दो सप्ताह से क्रीडामन्त्री की ओरसे परस्पर सामुख्य का भी आयोजन किया गया। इन खेलो को देखकर यह कहा जा सकता है कि अभी काफी तैयारी की आवश्यकता है। अभी समय बहुत है यदि अबभी हमारे खिलाडी भाई चाहे तो खूब अच्छी पार्टी तैयार कर सकते है। इस बार इसलिए भी विशेष तैयारी की आवश्यकता है- क्योंकि इसवर्ष टूर्नामेन्ट कुल भूमि मे ना मनाया जाकर मेरठ जैसे हौकी के केन्द्र मे ~~[illegible]~~। किया जा रहा है। आशा है हौकी दलके सुविधा और क्रीडामंत्री, इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

हस्तकन्दुक- हस्त कन्दुक का भी सामुख्य मेरठ में होगा, अतः हस्तकन्दुक की ऐसी तैयारी की जारही है। कोई एक जमाना था जबकि हस्तकन्दुक की खेल के महाविद्यालय के लिए

भाइयो मे विशेष उत्साह था। अब यह उत्साह कुछ कम होता नजर आ रहा है। सम्मुख्य जैसे जैसे निकट आता जा रहा है वैसे वैसे हस्तकन्दुक की खेल भी समाप्त होती जा रही है। हम तो इस सप्ताह हस्तकन्दुक की खेल को देखने जाना चाहते थे किन्तु क्रीडाक्षेत्र ही खाली दिखाई देता था। श्री क्रीडामन्त्री जी से ज्ञात हुआ है कि रवन्ना और लुधियाना की हस्तकन्दुक की टीमे भी शायद सम्मुख्य मे भाग लेगी। इस अवस्था मे हस्तकन्दुक मे तो बहुत ही तैयारी की आवश्यकता है। आशा है इस विभाग के अधिकारी इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

इतना होने पर भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इस सत्र मे क्रीडा का कार्य पिछले वर्षों की अपेक्षा अधिक सुचारु रूप से चल रहा है। इसलिए क्रीडामन्त्री धन्यवाद के पात्र है।

श्री श्रद्धानन्द टूर्नामेंट मेरठ (निजसम्वाददाता)

श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंट में कुल

२१ दल आए थे। उनमें इण्डिपेण्डेण्ट रिजर्व देहली, खालसा क्लब देहली, गुरुकुल कांगड़ी अ, मार्शयूनियन प्रसिद्ध थे। अन्त में गुरुकुल दल अ को ६ गोलों से हराकर श्री श्रद्धानन्द चल विजयोपहार मुजफ्फरनगर की प्रसिद्ध टीम मार्शयूनियन ले गई है।

श्री श्रद्धानन्द वालीबॉल टूर्नामेंट मेरठ
(नि। सम्वाददाता द्वारा)

इस टूर्नामेंट में भी १३ दलों ने भाग लिया था। मेरठ कालिज, गुरुकुल ब, डी ए वी कालेज देहरादून, डी ए वी हाईस्कूल मुजफ्फरनगर के दल प्रमुख थे। अन्त में मेरठ कालिज ने गुरुकुल ब को अनिर्णीत खेल में हराकर श्री श्रद्धानन्द चल विजयोपहार प्राप्त किया।

दोनों टूर्नामेंट अत्यन्त सफलता से सम्पन्न हुए। इसके लिए [illegible] धन्यवाद के पात्र हैं।

[illegible]

सहभोज का व्यवस्था —

पिछले कुछ वर्षों से सहभोजों पर कुछ ऐसा प्रतिबंध सा लगाया है कि ब्रह्मचारी अपने अभिभावकों को पूर्ण स्वतन्त्रता से नहीं मना सकते। सहभोजों का समय सायंकाल से हटाकर मध्याह्न कर दिया गया है। परन्तु अब वहीं आपने ठीक साढ़े १२ बजे भी प्रीतिभोज होने देना है। उसके लिये तो वहीं शाम का समय ठीक है। हमारी सम्मति में तो ब्रह्मचारी के लिये रात्रि को भोजन करना वैसे ही निषिद्ध है, लेकिन जब रात्रि भोजन इस नियम पालन करता ही है तो शाम के स्थान पर दिन में करने से अनावश्यक असर नहीं पड़ेगा। अतः श्री आचार्य जी से प्रार्थना है कि वे इस ओर ध्यान देकर अनुचित प्रतिबन्ध को, जो ब्रह्मचारियों के आपसों और दूर करेंगे। ब्रह्मचारी जो तरह को सहयोग के समय सहभोज करवाने में विशेष कठिनाई होती है।

दूसरे आजकल गुरुकुल में हड़ताल करना भी एक रिवाज सी आम हो गई है। इसी लिए छोटी छोटी बातों पर हड़तालें हो जाने लगी हैं। किसी भी ब्रह्मचारी के ~~अमर्यादित~~ व्यवहार के लिए सारी कक्षा का दण्डित करना कोई बहुत अच्छा कार्य नहीं है। यद्यपि हम हड़तालें करने के विरोधी तो नहीं बल्कि उन्हें अनुचित मानने के पक्षपाती हैं, तथापि गुरुकुलीय वातावरण को सन्तुलित रखते हुए इसका कुछ और ही रूप होना चाहिये ऐसी हमारी धारणा है।

~~[illegible]~~ शासन

गुरुकुल के विद्यार्थी जीवन में आत्म शासन का भी बड़ा महत्व है। अतः प्रारम्भ से ही इस ओर अधिकारियों का ध्यान रखने की चेष्टा करता आया है। आज लगभग १२ वर्षों के परीक्षण के बाद 13-14वीं श्रेणी को कुछ अंशों में स्वायत्त शासन दिया गया है। लेकिन अपने 2-3 साल के अनुभव के आधार पर कह सकते